||ॐ||

लघुच्छन्दोऽलंकारदर्पणः

अन्य नाम

देवीस्तवः

ग्रन्थकार

महाकवि नित्यानन्द शास्त्री

सम्पादक

डॉ. कमला प्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक

आचार्य नित्यानन्द स्मृति संस्कृत शिक्षा एवं शोध संस्थान

कोलकाता

॥ॐ॥

लघुच्छन्दोऽलंकारदर्पणः

अन्य नाम

देवीस्तवः

ग्रन्थकार

महाकवि नित्यानन्द शास्त्री

सम्पादक

डॉ० कमला प्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक

आचार्य नित्यानन्द स्मृति संस्कृत शिक्षा एवं शोध संस्थान

कोलकाता

लघुच्छन्दोऽलङ्कारदर्पणः

अन्य नाम

देवीस्तवः

ग्रन्थकार तथा संस्कृत टीकाकार

महाकवि नित्यानन्द शास्त्री

हिन्दी टीकाकार

विद्याभूषण भगवतीलाल शर्मा

सम्पादक

डॉ० कमला प्रसाद द्विवेदी

प्रथम संस्करण : १९१२ ई०

द्वितीय संस्करण : २००६ ई०

मूल्य : २००·००

मुद्रक

अमृताक्षर

७/१ बी, ग्रांट लेन, कोलकाता - ७०० ०१२

प्रकाशक

आचार्य नित्यानन्द स्मृति संस्कृत शिक्षा एवं शोध संस्थान

गिरिजा निकेतन, ए-१३६, लेक गार्डेन्स

कोलकाता - ७०० ०४५

पुरोवाक्

बीसवीं सदी के प्रथम चरण में प्रौढ़ और पाण्डित्य पूर्ण संस्कृत काव्य-रचना करने वाले प्राचीन परिपाटी के परिनिष्ठित कवियों में जोधपुर के पं० नित्यानन्द शास्त्री का नाम सुविदित है। इनकी विशिष्ट पहचान बनी इस प्रकार के चित्रकाव्यों की रचना जिनके प्रत्येक पद्य के प्रथमाक्षर को लेकर जोड़ें तो मूल रामायण (वाल्मीकीय रामायण के प्रथम काण्ड का प्रथम सर्ग) बन जाए, प्रत्येक पद्य के चतुर्थ चरण को अलग करें तो कालिदास के मेघदूत के पद्य का चतुर्थ चरण बन जाए। भाषिक संरचना में इस प्रकार के अद्‌भुत शब्द चमत्कारों की योजना संस्कृत जैसी विशिष्ट कम्प्यूटरी गढ़न की धनी क्लासिकी भाषा में ही सम्भव है, यह स्पष्ट है। इसी भाषा में ऐसे काव्यों की अलग श्रेणी चित्रकाव्यों के नाम से वर्गीकृत है जिसमें इस प्रकार के शब्द-चमत्कार निहित हों। कभी ऐसे काव्यों में छत्र, चामर, खड्ग आदि आकृतियों में जड़े अक्षरों वाले पद्य समाहित होते हैं, कभी किसी पद्यविशेष में ऐसा अर्थ निहित होता है जिससे कोई अलङ्कार बन जाए, साथ ही उस अलङ्कार का नाम भी उस पद्य के अक्षरों में निकल आता है। इस प्रकार के चित्र काव्यों को छत्रबन्ध, चामरबन्ध,खड्गबन्ध आदि अभिधानों से पहचाना जाता है तथा अलङ्कार या छन्द का नाम भी पद्य के अक्षरों में छिपे होने को "मुद्रा" अलङ्कार कहा जाता है।

पं० नित्यानन्द शास्त्री ने अपने जीवनकाल में बड़ी संख्या में इस प्रकार के चित्रकाव्यों की रचना की थी। चौदह सर्गों का रामकथा काव्य "श्रीरामचरिताब्धिरत्नम्" उनकी विशिष्ट कृति के रूप में विद्वत्समाज में सुविदित है जिसके प्रत्येक पद्य के प्रथमाक्षर से मूलरामायण बन जाती है। इसी प्रकार "हनुमद्‌दूतम्" काव्य में पद्यों का चतुर्थ चरण कालिदास के मेघदूत काव्य का चतुर्थ चरण बन जाता है। इसी प्रकार

के शब्दचमत्कारपूर्ण चित्रकाव्यों की शृंखला में उन्होंने अपनी कुलदेवी दधिमथी की स्तुति में ४० पद्य लिखे थे जो अलग अलग छन्दों में थे, साथ ही प्रत्येक पद्य में कोई न कोई शब्दालङ्कार या अर्थालङ्कार भी था। ब्राह्मण वर्ण के दाधीच वर्ग में उत्पन्न विप्रवरों की कुलदेवी मारवाड़ की उपास्य गोठ मंगलोद ग्राम में स्थित दधिमथी या दधिमती को माना जाता है। पं० नित्यानन्द जी दाधीच होने के कारण कुलदेवी दधिमथी के उपासक थे। वैसे उनकी भक्ति भगवान राम में तो थी ही जिसके कारण उन्होंने रामचरित्र पर अनेक महाकाव्य लिखे थे (जैसे संस्कृत में "श्रीरामचरिताब्धिरत्नम्" और हिन्दी में "श्रीरामकथा-कल्पलता")।

दधिमथी की स्तुति में लिखे इन ४० पद्यों में जिस जिस छन्द का प्रयोग किया गया है उसका नाम उस पद्य के अक्षरों में छिपा हुआ मिल जाए, साथ ही जिस अलङ्कार की योजना है उस अलङ्कार का नाम भी पद्य के अक्षरों में कहीं निकल आए इस चमत्कार का गुंफन भी कवि ने प्रत्येक पद्य में कर दिया। इस प्रकार प्रत्येक पद्य में एक छन्द और एक अलङ्कार का नाम निहित हो गया जब कि उस पद्य का उद्देश्य देवी दधिमथी की स्तुति करना है, उसका अर्थ भी दधिमथीस्तुतिपरक ही निकलता है। इस प्रकार के अद्भुत चमत्कार को प्रत्येक पद्य के अन्दर समाहित करने वाले इस काव्य का शीर्षक कवि ने काव्य की वर्ण्य-वस्तु की दृष्टि से तो "देवीस्तव" रखा किन्तु प्रत्येक पद्य में कोई न कोई छन्द अलग है तथा अलङ्कार भी समाहित है इस नाते उसका दूसरा नाम रखा गया "लघुछन्दोऽलङ्कारदर्पणः"। इस प्रकार के शब्दचमत्कार के कारण प्रत्येक पद्य में जो जटिलता आना स्वाभाविक है उसकी गुत्थी सुलझाने के लिए यदि कोई टीका या व्याख्या उस काव्य की न हो तो सामान्य पाठक की क्या बिसात कि उसका अर्थ समझ सके ? ऐसी जटिल पंक्तियों की व्याख्या लिखना भी स्वयं कवि के अलावा अन्य किसी के लिए किस प्रकार सम्भव हो सकता है ?

यही कारण है कि प्रत्येक पद्य के शब्दों का अन्वय (और सन्धिविच्छेद) कर उसकी संस्कृत में व्याख्या स्वयं कविवर पं० नित्यानन्द शास्त्री ने लिखी जिसका नाम "नित्यानन्दिका व्याख्या" रखा गया। इस व्याख्या में प्रत्येक पद्य में प्रयुक्त छन्द का लक्षण कालिदास रचित "श्रुतबोध" नामक छन्दःशास्त्र के लक्षणग्रन्थ से उद्धृत कर दिया गया (जिसकी विशेषता यह है कि इसमें जगण, भगण आदि गणों के द्वारा छन्दों का लक्षण बताने की बजाय केवल लघु और गुरु वर्ण विन्यास के आधार पर छन्दोलक्षण बताये गये हैं) तथा उस पद्य में आने वाले अलङ्कार का लक्षण "वाग्भटालङ्कार" नामक लक्षणग्रन्थ से। इस संस्कृत व्याख्या के साथ हिन्दी अनुवाद भी कवि के ज्येष्ठ भ्राता पं० श्री भगवतीलाल शर्मा द्वारा करके साथ में मुद्रित करवा दिया गया। हिन्दी टीका का नाम "तात्पर्यदर्शिनी भाषाटीका" रखा गया। सर्व प्रथम यह चित्रकाव्य सन् १९१२ ई० में मुम्बई के सुप्रसिद्ध प्रेस सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास के वेंकटेश्वर प्रेस से छपा था। कवि ने इसका मुद्रणाधिकार सहर्ष इस प्रेस को दिया था।

लगभग सौ वर्ष पूर्व कवि के यौवनकाल में छपा यह काव्य इन दिनों दुर्लभ हो गया था। वैसे भी इस प्रकार के प्रौढ़ और क्लिष्ट काव्यों के गुणग्राहक पाठक विरल होते जा रहे हैं, अतः इसका पुनर्मुद्रण कठिन लग रहा था। पं० नित्यानन्द जी का देवलोकवास सन् १९६१ में हो गया। उनके पुत्र सन्तति न होने पर भी उनके दौहित्र श्री ओम प्रकाश आचार्य ने जो कोलकाता में अपने मातामह की यशोरक्षा के लिए "आचार्य नित्यानन्द स्मृति संस्कृत शिक्षा एवं शोध संस्थान" की स्थापना कर पं० नित्यानन्द जी के ग्रन्थों के पुनर्मुद्रण का अभियान चला रहे हैं, पण्डितजी के अन्य महाकाव्यों की तरह इस देवीस्तव का भी पुनर्मुद्रण करने की योजना बनाई। इसके फलस्वरूप यह चित्रकाव्य जो स्तोत्रकाव्य भी है, अलङ्कारों और छन्दों के लक्षणों हेतु लक्ष्यकाव्य भी है, पुनर्मुद्रित होकर आपके हाथों में है। इसमें स्वयं कवि की संस्कृत

व्याख्या और उनके ज्येष्ठ भ्राता श्री भगवतीलाल जी की हिन्दी टीका ज्यों की त्यों रखी गई है। संस्कृत और हिन्दी की भूमिकाएँ भी यथावत् मुद्रित हैं।

काव्य का प्रथम पद्य जिस छत्रबन्ध के रूप में गुम्फित है उसका रेखाचित्र भी प्रथम संस्करण की तरह ज्यों का त्यों मुद्रित किया जा रहा है ताकि पाठक को चित्रकाव्यों की शैली का एक नमूना मिल सके। श्री ओ.पी.आचार्य ने कोलकाता के एक सुप्रथित विद्वान् डॉ० कमला प्रसाद द्विवेदी से यह अनुरोध किया था कि वे इस पुनर्मुद्रण की देखरेख का कार्य सम्हालें क्योंकि यह पुनर्मुद्रण छायाचित्र पद्धति से न होकर नये सिरे से कंपोज़ करके सम्पादित किया जाना था। इसके फलस्वरूप डॉ० द्विवेदी ने इसके सम्पादन का कार्य सम्हाला। उन्होंने प्रत्येक पद्य के छन्द का स्वरूप समझाने हेतु प्रत्येक वर्ण पर लघु-गुरु के बोधक चिह्न लगाकर छन्दःशास्त्र सीखने वालों को सुविधा प्रदान करने का प्रयास इसमें किया है, यह पाठक देखेंगे ही। यह "श्रुतबोध" के अनुसार छन्दोलक्षण समझने की दृष्टि से किया गया है जो लघु-गुरु वर्णों की व्यवस्था के आधार पर छन्द का लक्षण देता है, जैसा कि बताया जा चुका है।

आशा है इस स्वनामधन्य कवि के इस विलक्षण काव्य की पुनरवतारणा से कवि की प्रतिभा का एक अन्य प्रमाण विद्वज्जगत् को मिल सकेगा तथा शोधार्थियों एवं पण्डितों को विशिष्ट अध्ययन हेतु उत्कृष्ट सामग्री प्राप्त हो सकेगी। इस काव्य के पुनः प्रकाशन के उपलक्ष्य में इसके विद्वान् सम्पादक तथा प्रकाशक दोनों भरपूर बधाइयों के पात्र हैं।

दीपोत्सव, सं० २०६३
२१ अक्टूबर २००६ **देवर्षि कलानाथ शास्त्री**

सम्पादकीय

महाकवि आचार्य नित्यानन्द शास्त्री के रचनात्मक वैदग्ध्य की जितनी भी प्रशंसा की जाय कम है। आप अकेले कवि हैं जिन्होंने संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में महाकाव्य लिखे। प्रस्तुत 'लघुच्छन्दोलंकारदर्पण:' छन्द और अलंकारों का उदाहरण ग्रन्थ है, जिसमें ३९ अलंकारों और ४० छन्दों के उदाहरण हैं। प्रत्येक श्लोक में एक छन्द और एक अलंकार का उदाहरण है। चूँकि अलंकार ३९ हैं इसलिए ४०वाँ श्लोक केवल छन्द का उदाहरण है। प्रत्येक श्लोक में सम्बन्धित छन्द एवं अलंकार का नाम भी दिया गया है। विषय के लिए इन्होंने माँ पार्वती (दधिमथी) को आधार बनाया है। इसीलिए ग्रन्थ का अन्य नाम 'देवीस्तव:' भी है। 'आशुकवि' नित्यानन्द शास्त्री की विलक्षण प्रतिभा का परिणाम है कि विषय बहुल होते हुए भी प्रत्येक श्लोक काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से सहज और मनोरम है। कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि छन्द, अलंकार अथवा उनके नामों के सामञ्जस्य के लिए जोड़-तोड़ किया गया है। इस दृष्टि से यह एक असाधारण रचना है जिसके एकमात्र अधिकारी नित्यानन्द जी ही हैं।

वाग्भट का वाग्भटालंकार

अलंकारों के उदाहरण के लिए नित्यानन्द जी ने वाग्भट के वाग्भटालंकार का अनुसरण किया है। वाग्भट नाम के दो अन्य रचनाकारों के नाम भी मिलते हैं। १. नेमिकुमार के पुत्र और काव्यानुशासन ग्रन्थ के रचयिता। २. अष्टांगसंग्रह और अष्टांगहृदय नामक वैद्यक ग्रन्थों के रचयिता। प्रस्तुत वाग्भट का प्राकृत भाषा में 'वाहड' नाम था। यह सोम के पुत्र थे जो महाराज जयसिंह (१०९३-११५४ ई०) के समकालीन थे। सन् ११२३ में इनके उपस्थित होने का प्रमाण मिलता है। यह जैनी थे। इनका वाग्भटालंकार बहुचर्चित हुआ और इस पर पाँच टीकाएँ

लिखी गईं। संस्कृत साहित्य के प्राचीन दुर्लभ-ग्रन्थों के शृंखलाबद्ध प्रकाशन काव्यमाला में भी शृंखला संख्या ४८ में इसका प्रकाशन निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई से हुआ। वाग्भटालंकार में ५ परिच्छेद हैं, जिनमें चौथा परिच्छेद अलंकारों का है। इसमें कुल ३९ अलंकार हैं।

कालिदास का श्रुतबोध

छन्दों के उदाहरण के लिए आचार्य नित्यानन्द जी ने कविकुलगुरु कालिदास के श्रुतबोध का चयन किया। यद्यपि श्रुतबोध के रचनाकार ने ग्रन्थ में अपना नाम नहीं दिया है किन्तु विद्वान् इसे महाकवि कालिदास की रचना मानते हैं। ऐसा अनुमान रचना-शैली से लगाया जाता है क्योंकि कालिदास ने अपनी प्रथम शृंगारिक रचना **ऋतुसंहार** में इसी शैली में अपनी प्रियतमा को सम्बोधित किया है। श्रुतबोध में कुल ४३ श्लोक हैं। आरम्भ के तीन श्लोकों में क्रमशः १- ग्रन्थ-प्रतिज्ञा, २- ह्रस्वदीर्घ ज्ञान और ३- गण-स्वरूप वर्णित हैं, शेष ४० श्लोकों में ४० छन्दों का ज्ञान कराया गया है। छात्रों को छन्दों का ज्ञान कराने के लिए इसे विभिन्न परीक्षाओं के पाठ्यक्रमों में भी सम्मिलित किया जाता रहा है।

लघुच्छन्दोलंकारदर्पणः में ग्रन्थकार का यह प्रयास है कि छात्रों और जिज्ञासुओं को छन्दों और अलंकारों का ज्ञान एक ही पुस्तक से प्राप्त हो जाय। प्रस्तुत ग्रन्थ को समग्र रूप से अथवा इससे चयनित प्रमुख छन्दों और अलंकारों के रूप में संस्कृत शिक्षा में यदि सम्मिलित किया जाय तो छात्रों को सरलता से इन्हें जानने में सुविधा होगी। संस्कृत न जाननेवाले भी देवाराधन के समय संस्कृत श्लोकों का सस्वर पाठ किया करते हैं। उन्हें उन छन्दों, उनके उच्चारण और अर्थ से उत्पन्न सौख्य के प्रति जिज्ञासा होती है। इस दिशा में सर्वसामान्य लोग इस ग्रन्थ से लाभ उठा सकते हैं।

पुनर्प्रकाशन के लिए सम्पादन करते समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि ग्रन्थकार की रचना, संस्कृत टीका और उनके अग्रज

भगवतीलाल जी की हिन्दी टीका मौलिक रूप में विद्यमान रहे क्योंकि सम्प्रति यह पुस्तक अप्राप्य एवं दुर्लभ है। कठिन शब्दों का अर्थ दे देने और छन्दों और अलंकारों का हिन्दी में सरल रूप से विवेचन कर देने से पुस्तक संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं को जाननेवालों के लिए समान रूप से उपयोगी हो गई है।

देवर्षि कलानाथ जी शास्त्री के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ जिनके परामर्श, प्रोत्साहन एवं पुरोवाक् से पुस्तक का पुनर्प्रकाशन सम्पन्न हुआ। जीरॉक्स प्रतियों में अनेक शब्द छूट गये थे जिन्हें उन्होंने स्वयं बाणभट्ट की कादम्बरी की तरह पूरा किया है। आचार्य नित्यानन्द शास्त्री के प्रस्तुत ग्रन्थ की उत्कृष्टता का इससे बढ़कर प्रमाण क्या होगा कि इसके प्रति देश के शीर्षस्थ संस्कृत-मनीषी देवर्षि कलानाथ शास्त्री द्वारा आशंसा व्यक्त की गई है।

संस्कृत तथा हिन्दी के मूर्धन्य महाकवि आचार्य नित्यानन्द जी शास्त्री (१८८९-१९६१) की पावन स्मृति में स्थापित 'आचार्य नित्यानन्द-स्मृति-संस्कृत-शिक्षा एवं शोध-संस्थान' के संस्थापक एवं संचालक आचार्य दम्पति (श्री ओमप्रकाश जी आचार्य एवं श्रीमती विमला जी आचार्य) अपने नानाश्री के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा रखते हुए संस्था के उद्देश्यों के प्रति दृढ़व्रती हैं। इस दिशा में इन्हें विद्वानों तथा संस्थाओं का सतत सहयोग और समर्थन प्राप्त हो रहा है। इन दीक्षित व्रतियों को परम सत्य का साक्षात्कार हो, यही मेरी कामना है –

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षया आप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते॥

प्रबोधिनी एकादशी, सं० २०६३ **कमला प्रसाद द्विवेदी**
२ नवम्बर २००६

प्रकाशकीय

'आचार्य नित्यानन्द-स्मृति-संस्कृत-शिक्षा एवं शोध-संस्थान' अपने उद्देश्यों के साथ सन् 1965 से निरन्तर अग्रसर है। इस दिशा में इसे आशातीत सहयोग और सफलता प्राप्त हो रही है। प्राचीन संस्कृत वाङ्मय के प्रचार-प्रसार, शोध, शिक्षण, प्रशिक्षण, प्रकाशन और भाषान्तरण के साथ-साथ संस्थान अन्य लोकोपकारी कार्यों में संलग्न है। संस्थान के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. आचार्य नित्यानन्द शास्त्री द्वारा लिखित संस्कृत एवं हिन्दी के ग्रन्थों और उन पर आधारित समीक्षाओं का प्रकाशन।
2. संस्कृत की दुर्लभ पाण्डुलिपियों का प्रकाशन।
3. प्रौढ़ों के लिए आगम, निगम, धर्म, दर्शन, ज्योतिष, कर्मकाण्ड आदि के ज्ञान के लिए केन्द्रों की स्थापना।
4. संस्कृत-शिक्षण एवं प्रशिक्षण के लिए केन्द्र तथा कार्य-शालाओं की व्यवस्था करना।
5. संस्कृत की उत्कृष्ट और लोकप्रिय कृतियों के अनुवाद का प्रकाशन।
6. संस्कृत तथा संस्कृति के सम्बन्ध में विद्वानों द्वारा लिखित मानक ग्रन्थों का प्रकाशन।
7. कर्मकाण्ड का शास्त्रीय विधि द्वारा प्रशिक्षण।

प्रथम उद्देश्य के अन्तर्गत **श्रीरामचरिताब्धिरत्नम्** (संस्कृत महाकाव्य), हनुमद्दूतम् (संस्कृत दूत-काव्य) **बालकृष्ण नक्षत्रमाला** संस्कृत गीत काव्य तथा **रामकथा-कल्पलता** (हिन्दी महाकाव्य), **दधीचि चरित** के अनुवाद सहित प्रकाशन हो चुके हैं।

लघुच्छन्दोऽलंकारदर्पणः का पुनः प्रकाशन इसी शृंखला के अन्तर्गत किया जा रहा है। ज्ञातव्य है कि इस ग्रन्थ को मूर्तरूप देने के लिए आचार्यश्री को विषय-वस्तु की तलाश थी। जोधपुर के निकट गोठ और **मांगलोद** गाँवों के बीच स्थित **दधिमथी देवी** की प्रतिमा, मन्दिर और परिसर का दर्शन करने के बाद उनका यह संकल्प पूर्ण हुआ। उन्हें अपार हर्ष हुआ कि देवी-स्तव से बढ़कर अन्य विषय क्या हो सकता है जिससे ग्रन्थ की फलश्रुति के रूप में पाठक को (1) **लोक लाभ** (2)

परलोक निबाह्, ये दोनों फल प्राप्त हो सकें। दधिमथी वही पराम्बा पार्वती हैं जिनकी आराधना से **दध्यङ्, दध्यञ्च** अथवा **दधीचि** नाम के परमर्षि की अस्थियों को वह ऊर्जा (energy) प्राप्त हुई जिससे बने वज्र से इन्द्र ने अजेय वृत्रासुर का वध किया। दधीचि के श्रेष्ठ अनुयायी आज भी **दाधीचि** नाम से अभिहित होते हैं। इनकी संख्या लाखों में है जो भारत के हर प्रान्त में बसे हैं अच्छे कुल के व्यक्ति **"दाधीच"** कहलाते हैं, जिनका कोई भी खास जाति से बन्धन नहीं है।

इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1912 ई. में हुआ था यह संस्करण तो भारत में विद्वानों तक पहुँच ही नहीं पाया। लगता है इसकी manuscript देश के बाहर ही चली गई। अतः 1912 वाला तो संस्करण माना ही नहीं जा सकता। हो सकता है, प्रकाशक ने manuscript तथा manuscript की प्रति से इसे छापकर देश के बाहर ही भेजा हो। इसकी एक प्रति जर्मनी के एक विद्वान को मिली। वहाँ के विद्वानों का मत है कि वेद में विज्ञान छिपा है। संस्कृत साहित्य में छिपे विज्ञान के मंथन के लिए व्याकरण का ज्ञान आवश्यक है। पं. नित्यानन्दजी ने व्याकरण का ज्ञान इस देवीस्वत में मथ दिया जिससे छंद अलंकार सम्बन्धि ज्ञान मिलता है। जर्मन छात्र भी इसे बड़े चाव से पढ़ते हैं। फिर बड़े प्रयास और खोज-बीन के बाद एक प्रति नानाश्री के घर से भी प्राप्त हुई। इस प्रति से जर्मनी से प्राप्त प्रति को मिलाया जो वस्तुतः एक ही है। **जसराज सेवा केन्द्र, जोधपुर** की तरफ से ही इस प्रमाणिक प्रति से प्रस्तुति तैयार हुई है। आचार्य नित्यानन्द शास्त्री के अतिप्राचीन दुर्लभ ग्रन्थ का यह प्रस्तुति मात्र है। वस्तुतः यह ग्रन्थ विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनुवाद, व्याख्या एवं शोध के द्वारा ही अपनी पूर्णता को प्राप्त करेगा जिसमें लगभग दो तीन वर्ष लग सकते हैं। आशा है, इस कार्य के लिए विद्वतगण और सरकार/सरकारिक agancies का सहयोग के लिए आगे आएँगे।

छन्द और अलंकारों का एकत्र ज्ञान करनेवाली इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक को पुनर्प्रकाशित कराने का सुझाव संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान् कलानाथजी शास्त्री ने दिया। न्यास के ट्रस्टी एवं प्रकाण्ड विद्वान् आदरणीय श्री रमारंजन जी मुखोपाध्याय ने भी इसका अनुमोदन किया। डॉ. कमला प्रसाद द्विवेदी ने इसके सम्पादन का उत्तरदायित्व वहन किया और छन्दों तथा अलंकारों को हिन्दी में व्याख्यायित कर ग्रन्थ को हिन्दी भाषियों के लिए भी उपादेय बना दिया। श्रीमती कल्याणी खेतान एक विदुषी होने के साथ-साथ कम्प्यूटर कला में भी पारंगत हैं। उन्होंने ग्रन्थ का शब्दांकन करने के साथ-साथ इसे लघु-गुरु के चिन्हों से भी मण्डित किया। संस्थान की ओर से मैं इन सभी के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

प्रकाशकीय समाप्त करने से पहले मैं जसराज सेवा केन्द्र के बारे में भी प्रकाश डालना चाहूँगा।

जसराज सेवा केन्द्र, जोधपुर की स्थापना 1930 में हो चुकी थी। आचार्य जसराज ने पण्डित रामकरण आसोपा तथा पण्डित नित्यानन्द शास्त्री को इसमें जोड़ा। फिर उनके पुत्र पण्डित धनराज आचार्य एवं इन्द्रराज आचार्य इसमें जुड़ गए।

पण्डित जसराज आचार्य कर्मकाण्ड तथा ज्योतिष ज्ञान एवं राजनीति के लिए मारवाड़ में प्रसिद्ध थे। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा आचार्य वंश के परिवार (गुरु परम्परा) से मेड़ता (मीराबाई) में हुई। फिर उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए जसराजजी ने कई बरस काशी (वाराणसी) में बिताए। इनके परिवार को राजनीति का अच्छा ज्ञान था, और यह परिवार 'दीवान' परिवार कहलाता था। कई रियासतों ने इनके परिवार को दीवान बनाया और वकील (रियासती Ambasador) भी, जिससे इस परिवार का राठौड़, होल्कर, जामनगर (जाम साहब), पटियाला, कीर्लोस्कर दरबार से गहरा सम्बन्ध रहा।

जसराज जी आचार्य के पूर्वजों को राठौड़ों और मराठों में बड़ा सम्मान प्राप्त था, इसलिए इस परिवार ने कई राजनैतिक सन्धिया (रियासतों के बीच) करवाईं। जसराज जी द्वारा बनाए कर्मकाण्ड पर शोध के लिए मारवाड़ राज्य के रामकरण आसोपा एवं पण्डित नित्यानन्द जी का विशेष सहयोग मिला। फिर यह परिवार भी पण्डित नित्यानन्दजी एवं रामकरणजी आसोजा का रिश्तेदार बन गया, जिसका अधिक जिक्र यहाँ आवश्यक नहीं है।

इसी परिवार ने ज्योतिष पर कई ग्रन्थ बनाए। इसके अधिकांश ग्रन्थ अप्रकाशित हैं। जसराजजी द्वारा दुर्गासप्तशही पर किए गए कार्य का संशोधन व extra material प्रदान करने का काम पण्डित नित्यानन्द शास्त्री ने किया। इसे भी आचार्य नित्यानन्द संस्कृत शिक्षा संस्थान द्वारा प्रकाशित कराया जाएगा।

दुर्गासप्तशति (शोध सहित) की प्रस्तुति में इनके परिवार से पण्डित इन्द्रराज, पं. बुद्धिप्रकाश, अमृत राज, सूरज प्रकाश, पुखराज आदि का सहयोग भी मिला।

आशा है, विद्वज्जन और साहित्य-प्रेमी इस ग्रन्थ का समादर करेंगे।

कार्तिक पूर्णिमा, सं. 2063
5 नवम्बर 2006

ओम प्रकाश आचार्य
प्रबन्ध-न्यासी

प्रस्तावना

श्रीमन्तं गजतुण्डं सुन्दरसिन्दूरबिन्दुशुभशुण्डम्।
वन्दे सुरुन्दतुन्दं स्वदन्तशुचिकान्तकान्तिजितकुन्दम्॥१॥
मरालाध्यासिता मञ्जुक्कणत्कच्छपिकाऽमला।
सरस्वतीव हृदि मे संगताऽस्तु सरस्वती॥२॥

सक्ता रजः-प्रकटसत्त्व-रजःसु विश्व-
विश्वप्ररोप-परिगोप-विलोपशक्ताः।
तापत्रयीहरणकर्मजुषोऽत्र लोके
लोकेशकेशवशिवाः शिवमावहन्तु॥३॥
यत्क्षेत्रजाता जगतीतले जना
गच्छन्त्यमी दाधिमथाभिधेयताम्।
देवस्तुता श्रीदधिमथ्यसंशयं
सोपासकानां विजयं सदा क्रियात्॥४॥

विदितमेवात्र खलु श्रुतपारदृश्वनां तत्रभवतां धीरधुरन्धराणाम्, यदुत समधिरोहति शास्त्रमुकुटालङ्कारपदवीं सरससुन्दरसन्दर्भगर्भ-वचनामृतरसास्वादनेन कविवरवदनालङ्कारभूतं चतुर्वर्गफलसाधनसाधनी-भूतमलङ्कारशास्त्रम्। न चान्तरा छन्दःशास्त्रज्ञानमवगाढुमर्हति, तद् यः कोऽपि सञ्जातशब्दशास्त्रपाटवोऽपि पाठकजनः। एतदेवोद्दिश्य निबन्धनं निबबन्धिरे नाना निबन्धा यथायथं तयोरुभयोरपि शास्त्रयोर्गहनशास्त्र-महोदधिमन्थनप्रवीणैर्धीरधुरीणैः। तत्रालङ्कारनिबन्ध-सिन्धुसन्तरणार्थमुडुपमिव निरमायि परमार्हतेन श्रीमता **वाग्भटेन** वाग्भटालङ्काराभिधानमलङ्कारशास्त्रं सरलतरम्। छन्दोग्रन्थशिखरिशिखरारोहणार्थं चारोहणमिव व्यररचत्कविकुल-चूडालङ्कारः **कालिदासः** श्रुतबोधनामानं सुबोधं छन्दःसन्दर्भम्। एतदुभयद्वारेण यथा लब्धुं प्रभवति तत्तच्छास्त्रमहामन्दिरप्रवेशं जनो, न तथाऽन्येन। परं

सत्यपि तत्र-तत्र तत्तल्लक्षणोदाहरणक्रमे, ग्रन्थान्तराऽन्तःपातिपद्योदाहरणसंघटनं विना कालान्तरे न हि स्मरणसरणिमारोहन्तिच्छात्रवर्गस्यालङ्काराश्छन्दांसि चेत्यपि नह्यविज्ञातं वरीवर्ति विज्ञवराणाम्। सत्सु महानिबन्धेषु संघट्यमानेष्वपि च तत्रतत्रोदाहरणेषु क्रमाद्दर्शनेन पुनः-पुनरनुशीलनासम्भवाद्विना भूयांसं प्रयासं न खलु हृदयकपट्टमवगाहन्ते तत्तच्छास्त्रे प्रविविक्षूणां सुतरां तत्तद्विषयाः। इत्याकलय्य व्यचिन्तयं चेतसि, यदुत कस्या अपि देवतायाः स्तवमुद्दिश्य तथा मयैको लघुरेव ग्रन्थो ग्रन्थनीयः यत्र हि दर्पण इव वाग्भटालङ्कारीया अलङ्काराः श्रुतबोधीयानिच्छन्दांसि च समं दृश्येरन्, येन देवतास्तवपठनेन फलप्राप्तिश्छन्दोऽलङ्कार विज्ञत्वं चेत्युभयमपि सिद्ध्येत्। इत्थं विचारयत एव मम कियानपि जगामावसानं काललवः। अथ यथाकालं श्रुतजनवर्ण्यमानातनुप्रभावो दर्शनोत्कलिकया भृशं प्रेर्यमाणो गत्वा योधपुरतो नागपुरमतिक्रम्य च ततः पञ्चषगव्यूतिप्रमितमध्वानं गोष्ठमङ्गलोदग्रामयोरन्तरालवनभूमिं पुनानां भगवतीं सुरासुरवन्द्यचरणतलां दधिमथीं[1] देवीमपश्यम्। दृष्ट्वा च तां प्रमोदमानमानसो व्यलोकयं देवीप्रभावेणाश्चर्यकारीणि हृदकूपस्तम्भादीनि मन्दिरगतान्यासेचनकवस्तूनि। तत्प्रभावचित्रीयितचेताश्च प्रतिज्ञातवान्पूर्वोक्तरूपं देवीस्तवं निर्मातुम्। अकरवं च तत्प्रसादादेनं **लघुच्छन्दोऽलङ्कारदर्पण**पराभिधानं तदुद्देशेन निबन्धम्। तत्र च प्रतिपद्यं पूर्वमलङ्कारस्य ततश्छन्दसो नामाऽपि युक्त्याऽसूचयम्। तत्तच्छन्दोऽलङ्कारसंघटनपुरस्सरं च स्वकृतया **नित्यानन्दिका**भिधानया व्याख्ययाऽमुं समयोजयम्। हिन्दी**भाषाटीकां** पुनरत्र मदीयज्येष्ठसोदरा गुरवः संशोधनपुरस्सरं सर्वजनसुबोधाय व्यरचयन्निति तेभ्यः सहस्रशो धन्यवादाः समर्प्यन्ते तदुपकारं बहुमन्यमानेन मया प्रकाशनाय ससर्वाधिकारं चैनं समार्पयं परमवैष्णवेभ्यो **मुम्बईस्थश्रीवेङ्कटेश्वर**यन्त्रालयाध्यक्षेभ्यः **श्रीकृष्णदास**

१. अस्याः देव्याः प्रभावप्रादुर्भावादिकं तु लवपुरीयप्राच्यविद्यालय (Oriental Collage) प्रधानाध्यापक महामहोपाध्याय पं० श्रीशिवदत्तशास्त्रिभी रच्यमाने दधिमथीनवनीतनाम्नि निबन्धे, योधपुरस्थ–दाधिमथ-महासभातः प्रकाश्यमाने दधिमथीनाम्नि पत्रे वा द्रष्टव्यम्।

श्रेष्ठिसूनुभ्यः **श्रीक्षेमराजाभिधेयेभ्यः** श्रेष्ठिभ्यः एतेपि स्वकीये **श्रीवेङ्कटेश्वर** यन्त्रालये मुद्रयित्वा प्रकाशितवन्त इति। महीयांसं धन्यवादमर्हन्ति वेदमहापुराणाद्यलभ्यनिबन्धोद्धारकास्त इति।

गच्छतः स्खलनं क्वाऽपि भवत्येव प्रमादतः इति वचनाद्यथामति संशोधितेऽप्यत्र निबन्धे यत्र कुत्रचनाशुद्धिः कृता जाता वा स्यात्, तत्र करुणावरुणालयैः सहृदयैः संशोधनीयमिति प्रणामपुरःसरं सविनयकृताञ्जलिरहं प्रार्थये।

सत्कृपाभिलाषी
नित्यानन्द शर्मा

॥श्रीः॥

प्रस्तावना का भाषान्तर

शोभा सम्पन्न, हाथी के मुँहवाले, सुन्दर सिन्दूर बिन्दुओं से सुशोभित सूँड़वाले, लम्बी तोंदवाले, अपने दाँतों की शुभ्र शोभा से कुन्द की शोभा जीत लेनेवाले गणेश की वन्दना करता हूँ॥१॥

हंस पर विराजमान, अपनी कच्छपिका नामक स्वच्छ वीणा की मधुर झंकार करती हुई सरस्वती की भाँति वाणी मेरे हृदय में विराजमान हो॥२॥

रज गुण से युक्त, प्रकृति के पाँचभौतिक घटकों से विश्व की रचना करनेवाले, विश्व के सृजन, पालन और संहार में रत ब्रह्मा, विष्णु और शिव हमारा कल्याण करें॥३॥

जिसके क्षेत्र में उत्पन्न व्यक्ति संसार में दाधिमथ नाम से जाने जाते हैं। देवता जिसकी प्रार्थना करते हैं वह दधिमथी देवी उपासकों को निश्चय रूप से सदा विजय प्रदान करे॥४॥

वेदपारंगत और अपार ज्ञानवान आपलोगों को यह ज्ञात ही है कि सरस सुन्दर रचना से युक्त वचनामृत रस का आस्वादन कराने से कविवरों के मुख का भूषण और चतुर्वर्ग के फल के साधन का साधन अलंकार शास्त्र शास्त्रों के मुकुट के रूप में शोभित है। शब्दशास्त्र में निष्णात भी छन्दशास्त्र के ज्ञान के बिना कोई इसमें डुबकी नहीं लगा सकता। इसी उद्देश्य से गहन शास्त्र सागर के मन्थन में प्रवीण महान ज्ञानियों ने इन दोनों शास्त्रों पर अनेक ग्रन्थ लिखे। इनमें अलंकार रचना-सागर को पार करने के लिए श्रेष्ठ जैन **श्री वाग्भट** ने नाव की तरह **वाग्भटालंकार** नामक अति सरल अलंकार शास्त्र की रचना की। छन्द शास्त्र के पर्वत शिखर पर चढ़ने के लिए सीढ़ी की भाँति कविकुल चूड़ालंकार **कालिदास** ने सुबोध **श्रुतबोध** नामक ग्रन्थ लिखा। इन दोनों शास्त्रों के महामन्दिर में इन दो द्वारों से लोग जैसा प्रवेश पा सकते हैं, वैसा अन्य से नहीं। ऐसा होते हुए भी ग्रन्थ के भीतर आनेवाले उन-उन लक्षणों के पद्यों के उदाहरण के बिना बाद में छात्र-गण छन्द और अलंकारों को याद नहीं रख पायेंगे, यह बात विद्वानों से छिपी नहीं है। बड़े-बड़े ग्रन्थों की रचना होने पर भी उन-उन उदाहरणों को क्रमशः देख कर पुनः पुनः अनुशीलन करना सम्भव नहीं है क्योंकि उन-उन विषयों को यदि पुनः कहना चाहें तो बहुत परिश्रम करने पर भी हृदय पटल पर नहीं आते। यह देखकर मैंने मन में सोचा कि किसी देवता की स्तुति विषयक मुझे एक लघु-ग्रन्थ लिखना चाहिए जिसमें वाग्भट के अलंकार और श्रुतबोध के छन्द दर्पण की भाँति देखे जा सकें। जिससे देवता की स्तुति का पाठ करने से फल की प्राप्ति तथा छन्द और अलंकारों का ज्ञान, ये दोनों एक साथ प्राप्त हो सकें। मुझे ऐसा सोचते कितने काल-खण्ड गुजर गये। फिर वह समय आया जब लोगों द्वारा अत्यन्त प्रभाव सुनकर दर्शन हेतु अत्यन्त प्रेरित होकर जोधपुर जाकर वहाँ से नागपुर (नागौर)पार करके पाँच-छः कोस की दूरी पर

गोष्ठ और मंगलोदय गाँवों के बीच की वनभूमि को पवित्र करती हुई सुरासुर वन्दित चरण भगवती **दधिमथी**[1] देवी का दर्शन किया। उनका दर्शन कर आनन्दित हृदय से देवी के प्रभाव से वहाँ के तालाब, कुएँ, खम्भों और मन्दिर के भीतर सींचनेवाली आश्चर्यजनक वस्तुओं को देखा। उनके प्रभाव से पूर्व संकल्पित **देवीस्तव** की रचना का भाव मन में अंकित हुआ। इस उद्देश्य से देवीस्तव की रचना की जिसका अन्य नाम **लघुच्छन्दोऽलङ्कारदर्पण** है। जिसके प्रत्येक पद्य में पहले अलंकार का फिर छन्द का नाम युक्ति पूर्वक सूचित किया। इसके बाद छन्द और अलंकारों से युक्त इस रचना में अपनी **नित्यानन्दिका** नाम की व्याख्या भी जोड़ दी। इसके बाद मेरे अग्रज और गुरु ने संशोधन पूर्वक सबके समझने योग्य हिन्दी भाषा टीका रची जिसके लिए उनका बहुत उपकार मानते हुए उन्हें सहस्रों धन्यवाद अर्पित करता हूँ। मुम्बई के **श्री वेंकटेश्वर** प्रेस के परम वैष्णव **श्री श्रीकृष्णदास** सेठ के पुत्र सेठ **श्री क्षेमराज** को प्रकाशन हेतु सर्वाधिकार दिया जिन्होंने अपने **श्री वेंकटेश्वर** प्रेस में इसे मुद्रित कर प्रकाशित किया। वेदपुराणादि दुर्लभ ग्रन्थों के उद्धारक आप अनेक धन्यवाद के पात्र हैं।

असावधानीवश चलते समय कभी फिसल भी जाते हैं ऐसा मानकर स्वबुद्धि के अनुसार संशोधित इस ग्रन्थ में कहीं त्रुटि हो गई हो या कर दिया हो तो करुणावरुणालय सहृदयों से सत्कृपाभिलाषी नित्यानन्द शर्मा मैं प्रणाम पूर्वक करबद्ध प्रार्थना करता हूँ कि वे उसे सुधार लें।

सत्कृपाभिलाषी

नित्यानन्द शर्मा

---

१. इस देवी का प्रभाव और प्राकट्य आदि जोधपुर के दाधिमथ महासभा से प्रकाशित दधिमथी नामक पत्र में लवपुरी के प्राच्य विद्यालय (ओरिएण्ट कॉलेज) के प्रधानाध्यापक महामहोपाध्याय पं० शिवदत्त शास्त्री द्वारा रचित दधिमथी नवनीत नामक निबन्ध में देखें।

Dr. Ramaranjan Mukherji
Ex. Chancellor Tirupati Sanskrit University
Ex. Vice-Chancellor—
Universities of Burdwan & Ravindra Bharati
Past President, Association of Indian Universities

Foreword

Ancient Literary Theoreticians differ widely among themselves in regard to the exact number of Literary Embellishments through incorporation of which additional charming-ness can be inducted into the structure of Poetry, making it more appealing to the connoisseurs of Poetic Art. This is an accepted proposition that ordinary linguistic expression blossom forth into the flower of poetic expression, when charming-ness inducted to it. Though this has been accepted by all literary theoreticians, in the search after that special quality due to the presence of which linguistic expression is raised to the status of poetic expression they differ widely among themselves. While the writers belonging to the pre-dhvani period mention that this specialty is inducted by the Symbolic contents, which is of paramount importance in poetry while the theoreticians belonging to post—dhvani period float the concept of Vakrokti, which is nothing but a turn given to an expression by the creative genius of the artist, the turn which keeps the charming ness of word and the charming ness of meaning at the same level and does not allow any one of these two types of charming ness to surpass the other.

Though all the writers belonging to the pre-dhvani period consider literary embellishment as the key factor in poetry, they express different opinions as to the exact numbers of the poetic figures. This is bound to happen because with passage of time new techniques of expression are bound to develop and with this emergence of new techniques, new embellishments are sure to emerge. Vaghata happens to be one of the theoreticians of pre-dhvani period, who, in his work on literary criticism has extended recognition to 39 literary embellishments, which based either on the relation of similarity or on the relation of causality or on the relation

of contradiction. Apart from these poetic figures, recognition is extended to Poetic Naturalism also, which consists in presentation of the Poetic Truth as it stands without illumining it in the light of another external truth.

While Vaghata choose the illustration of different poetic figures from certain well-known authors and some times structures his own illustration Mm. Nityananda Sastry, a profound literary artist as well as a literary critic of the twentieth century thinks it proper to carve out poetical paintings, competent to illustrate figures sponsored by Vaghabatha, as also to offer salutation to the Divine Mother. It is not a mean task to structure eulogies in honour of the Divine Mother, giving expression to profundity of Devotionalism an at the same time to take care to see that such paintings emerge as illustrations of one or the another poetic figures admitted by Vaghabhata. It requires a combination of creative and critical intellect as also of an appreciative genius to structure such poetical images overflowing with Devotionalism and, at the same time, illustrating the literary embellishments.

It is gratifying to note that Pandit Nityananda has a further furnished illustrations to metres dealt with by Kalidasa in his Sruthabodha. There is an intimate relation between the literary embellishment and the metre, because both these two constituents of the poetic structure are brought into being by the emotional mood in its endeavour to express itself.

This is a fact that the literary artist is not required to take recourse to a separate effort in his endeavour to incorporate a literary embellishment and find out he metre through which he can express his thoughts and emotions.

The metre and the literary embellishment flow from the fountain head of his poetic imagination. Unless the connoisseur of poetic art makes himself acquainted with the nature of the emotional mood presented in the structure of poetry it becomes difficult for him to understand the reasons for employment of the particular metre or incorporation of the particular poetic figure. This indeed is a difficult task and the connoisseur needs guidance from literary theoreticians to understand the part played by employment of a particular metre or incorporation of particular figure in bringing into expression the dominant emotional mood.

It is a matter of great joy that Pandit Nityananda Shastri is not only a literary artist himself, but a critic also and combination of creative and critical faculties in him has enabled him to structure a work exemplifying the metres recommended by the first and the greatest of Sanskrit literary artists and literary embellishment recommended by one of the great literary theoreticians which the critical world has ever seen. An the same time the great Shastri has carved out poetical paintings that are overflowing with Devotionalism, making that mood the center of gravity of his poetic Art. It is not a mean task to structure a poetical image keeping an eye on the literary embellishment, suggested by one of our top ranking theoreticians as also on the salient trait of different metres suggested by the greatest of the literary artists and to compose poem full of Devotionalism so that with the help of these Devotional lyrics salutation can be offered to the Divine Mother leading to fulfillment of one's human journey. Pt. Nityananda Sastri has to his credit a number of creative writings, particularly poems and each of his poems is marked new flashes of ideas and charming ness of novel techniques, as a result of which he has already been accepted as a great Sanskrit Poet, capable of being ranked with Kalidasa and Bhavabhuti, Megha and Bhatti.

I am sure the work entitled "Laghu Chhando Alankar Darpan" structured by Pt. Nityananda Sastri will enjoy the celebrity, earned by such books like Chandi and Mohamud garu and will be chanted in all families of Indian Sub-continent,—families wanting to see that human journey of all their members is brought into consummation. It is gratifying to note that Sri O.P. Acharya, Granson of Pandit Nityananda Sastri, has come forward with the edition of this monumental work, which will definitely inspire the lovers of Sanskrit and Indian culture for all time to come.

I offer my humble salutation to the God grown in Mr. Nityananda Sastri,—congratulate Sri O.P. Acharya and welcome the new edition of "Laghu Chhando Alankar Darpan" to the arena of Sanskrit Devotional Lyric and Literary Criticism.

28th April, 2007 — Ramaranjan Mukherji

125/1 Santoshpur Avenue
Kolkata-700 075

॥ श्रीदेव्यै नमः ॥

श्लोकानुसार अलंकार और छन्दों के नाम

एतद्ग्रन्थ उदाहरणरूपेण दर्शितानामलंकाराणां छन्दसां च नामानि यथासंख्यं दर्श्यन्ते –

श्लोकाना तेषां च संख्या	अलंकारनामानि	छन्दोनामानि
१	चित्रम्	आर्या
२	वक्रोक्तिः	गीतिः
३	अनुप्रासः	उपगीतिः
४	यमकम्	अक्षरपंक्तिः
५	जातिः	शशिवदना
६	उपमा	मदलेखा
७	रूपकम्	श्लोकः
८	प्रतिवस्तूपमा	पद्यम्
९	भ्रान्तिमान्	माणवकाक्रीडम्
१०	आक्षेपः	नगस्वरूपिणी
११	संशयः	विद्युन्माला
१२	दृष्टान्तः	चम्पकमाला
१३	व्यतिरेकः	मणिबन्धः
१४	अपह्नुतिः	हंसी
१५	तुल्ययोगिता	शालिनी
१६	उत्प्रेक्षा	दोधकम्
१७	अर्थान्तरन्यासः	इन्द्रवज्रा
१८	समासोक्तिः	उपेन्द्रवज्रा

श्लोकानां तेषां च संख्या	अलंकारनामानि	छन्दोनामानि
१९	विभावना	उपजातिः
२०	दीपकम्	(विपरीता)
		ऽऽख्यानकी
२१	अतिशयः	रथोद्धता
२२	हेतुः	स्वागता
२३	पर्यायोक्तिः	वैश्वदेवी
२४	समाहितम्	तोटकम्
२५	परिवृत्तिः	भुजङ्गप्रयातम्
२६	यथासंख्यम्	द्रुतविलम्बितम्
२७	विषमम्	प्रमिताक्षरा
२८	सहोक्तिः	हरिणीप्लुता
२९	विरोधः	वंशस्थम्
३०	अवसरः	इन्द्रवंशा
३१	सारम्	प्रभावती
३२	श्लेषः	प्रहर्षिणी
३३	समुच्चयः	वसन्ततिलकम्
३४	अप्रस्तुतप्रशंसा	मालिनी
३५	एकावली	हरिणी
३६	अनुमानम्	शिखरिणी
३७	परिसंख्या	पृथ्वी
३८	प्रश्नोत्तरम्	मन्दाक्रान्ता
३९	संकरः	शार्दूलविक्रीडितम्
४०		स्रग्धरा

॥ॐ॥

दधिमथी स्तुति

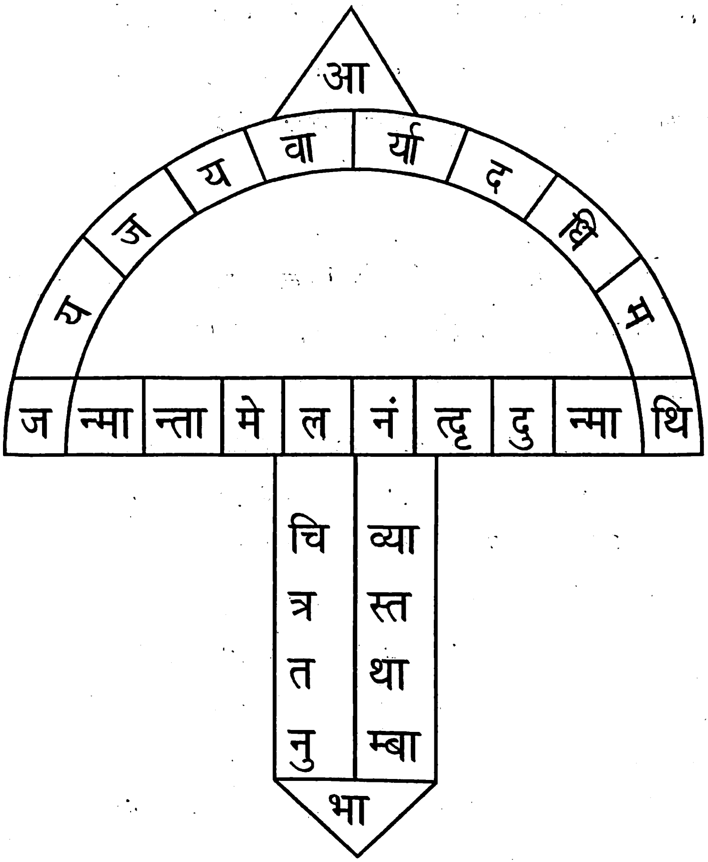
जयति दधिमथी नौमि दधिमथीम् दधिमथ्या सिद्धिः सकलाः
दधिमथ्यै कुरु नमो मनः मम दधिमथ्याः पलायन्ते खलाः।
दधिमथ्याः स्मर गोष्ठ-मंगलोदय - वनगम् मन्दिरम् अतुलम्
दधिमथ्याम् कुरु रमणम् दधिमथि पाहि पाहि दाधीच कुलम्॥

अन्वित-पदार्थ

जयति = विजय प्रदान करें, **दधिमथी** = दधिमथी (दुर्गा का एक नाम), **दधिमथीम्** = दधिमथी को, **नौमि** = नमन करता हूँ, **दधिमथ्या** = दधिमथी से ही, **सिद्धिः** = सिद्धियाँ, **सकला** = समस्त (उत्पन्न होती हैं), **दधिमथ्यै** = दधिमथी को, **नमो** = नमन, **कुरु** = करो, **मनः** = मन, **मम** = मेरा, **दधिमथ्याः** = दधिमथी से, **पलायन्ते** = पलायन कर जाते हैं, **खलाः** = दुष्ट जन, **दधिमथ्याः** = दधिमथी का, **स्मर** = स्मरण करो, **गोष्ठ-मंगलोदय – वन, मन्दिरं-अतुलाम्** = गोष्ठ मंगलोदय वन में स्थित अतुलनीय मन्दिर में, **दधिमथ्याम्** = दधिमथी के (सान्निध्य) में, **रमणम्** = रमण, **कुरु** = करो, **दाधीच-कुलम्** = दधीचि के कुल की, **पाहि-पाहि** = रक्षा करो।

विशेष – यह श्लोक प्रथमा से सप्तमी पर्यन्त विभक्तियों पर आधारित है।

देवीस्तव-प्रथमपद्यस्य
च्छत्रबन्ध -
चित्रम् ।



श्रीशः शरणम्

देवीस्तवः

संस्कृतटीका – भाषाटीकासहितः

। । । । । ऽ ऽ । । । ।(१२) ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ । ऽ ऽ ऽ (१८)

जयजय वार्या दधिमथि !, जन्माऽन्तामेलनं हृदुन्माथि[1]।

ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ(१२) ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ (१५)

आवालचित्रतनुभा, आर्यानव्यास्तथाऽम्बाभा ।।१ ।।

(छत्रबन्धचित्रम्)

अन्वयः

आवालचित्रतनुभा ! दधिमथि ! (त्वं) जय जय। (त्वं) हृदुन्माथि जन्मान्तामेलनं वार्याः। तथा (त्वं) अम्बाभा। आर्यान् अव्याः।

शब्दार्थ –

आवाल – पैर से केश पर्यन्त, चित्रा – अपूर्व,

तनुभाः – देह की कान्ति, हृदुन्माथि – मनोव्यथा,

जन्मान्तामेलनम् – जन्म से मृत्यु तक,

अम्बाभा – माता के समान, अव्याः – पालन करें।

नित्यानन्दो देवीं नत्वा स्वगुरुं च भगवतीलालम्।
कुरुते स्वकृत उमास्तव इह नित्यानन्दिकां टीकाम्।।१।।

संस्कृत टीका –

।। जयेति।। आवालं केशपर्यन्तं चित्रा (अपूर्वरूपशालित्वात्) आश्चर्यकारिणी तनोः शरीरस्य भाः कान्तिर्यस्याः सा तथोक्ता, तत्सम्बुद्धौ आवालचित्रतनुभाः ! दधिमथि ! हे देवि ! त्वं जय जय, अतिशयेन जयवती भवेत्यर्थः। तथा समुच्चये। त्वं हृदुन्माथि मनोव्यथकम्, जन्मान्तौ

१. पादान्त वर्ण विकल्प से गुरु होते हैं।

जन्ममरणे तयोरामेलनं सम्बन्धस्तं, वार्याः दूरीक्रियाः। अस्माकं जन्ममरणराहित्यं कुर्विति भावः। तथा अम्बाभा मातृसदृशी त्वमिति शेषः। आर्यान् भक्तान्, अव्याः पालय। अत्र पद्ये प्रारम्भे जयशब्दप्रयोगेण कविना मंगलं सूचितमित्यर्थः।

अत्र पदिकोभयपार्श्वस्थिताभ्यां 'ज, थि' इति वर्णाभ्यां; दण्डोपरिस्थ 'आ' इत्यक्षरेण; पदिकामूलभागस्थित 'वा, र्या' इति वर्णाभ्यां; दण्डपदिकामध्यवर्त्ति 'ल, नं' इत्यक्षराभ्यां; दण्डाऽधःस्थित 'भा' इत्यक्षरेण च अङ्गसन्धौ संजाते सति छत्ररूपवस्तुकल्पनायाः सत्त्वात्प्रसत्तेश्च संभवाच्चित्रालंकारः। उक्तं च तल्लक्षणं श्रीमता कविवरेण वाग्भटेन स्वकृते वाग्भटालंकारग्रन्थे **"यत्राङ्गसंधिस्तद्रूपैरक्षरैर्वस्तुकल्पना। सत्यां प्रसत्तौ तच्चित्रं, तच्चित्रं चित्रकृच्च यत्"** इति। स च चित्रालंकार 'आवालचित्रतनुभा' अत्र 'चित्र' इति पदसूचनेन युक्त्या दर्शितः ; अत एव तस्य स्थूलत्वेन न्यासो मूले दर्शितः॥

अपि चात्र प्रथमपादे द्वादशमात्राणां, द्वितीये चाष्टादशमात्राणां, तृतीये पुनर्द्वादशमात्राणां, चतुर्थे च पादे पञ्चदशमात्राणां सत्त्वादार्यावृत्तं ज्ञेयम्। तल्लक्षणं तूक्तं महाकविना श्रीकालिदासेन स्वविरचिते श्रुतबोधनाम्नि निबन्धे – **"यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये, चतुर्थके पञ्चदश सार्या"** इति। तच्चार्यावृत्तं 'आर्यानव्या' इह 'आर्या' इति प्रयोगेण सूचितम्। अत एव तस्य स्थूलत्वेन न्यासः। एवमग्रेऽपि पूर्वोक्ततत्तत्कविकृततत्तद्ग्रन्थोक्तान्येवाऽलंकाराणां छन्दसां च लक्षणानि वक्ष्यन्ते। अनयैव च रीत्या मूले सर्वत्र स्थूलाक्षरसंकेतितौ वृत्तालंकारौ द्रष्टव्यौ। न च "कतरोऽलंकारसूचकः ? कतरश्च शब्दो वृत्तसूचकः ? स्थूलत्वसाम्येन न सम्यङ्निश्चयः स्यात्" इति शंकनीयम्, सर्वत्र हि पद्येषु पूर्वमलंकारसूचकस्य ततश्च वृत्तसूचकस्य शब्दस्य नियतत्वादिति॥१॥

नत्वा भगवतीलालो माधवं, गिरिजास्तवे।
कुरुते सुखबोधाय भाषां तात्पर्यदर्शिनीम्॥१॥

भाषाटीका –

हे विचित्रकान्तिवाली ! देवी दधिमथी ! तुम्हारी जय हो, जय हो। तू हमारे मन को दुःख देनेवाले जन्ममरण के सम्बन्ध को दूर कर और माता की तरह भक्तों की रक्षा कर॥१॥

चित्र अलंकार – जिस बन्ध में वस्तु कल्पना वस्तुओं के अंगों की तरह सन्धिरूप अक्षरों से होती है उसे चित्र अलंकार कहते हैं। इसके चार भेद हैं –

१. **आकार-चित्र** – इसके उदाहरण हैं – कमल, छत्र, चामर, स्वस्तिक, कलश, हल, मुसल आदि।

२. **गति-चित्र** – गोमूत्रिका, घोड़े-हाथी के पैर आदि।

३. **स्वर-चित्र** – जिनमें पूरे श्लोक में केवल एक या दो स्वर हों। तीन स्वरों के चित्र दुर्लभ होते हैं।

४. **व्यञ्जन-चित्र** – एक से चार व्यञ्जनों तक का व्यञ्जन-चित्र होता है, जिसकी रचना कठिन होती है।

वाग्भट ने चारों का उदाहरण दिया है। नित्यानन्द जी ने चित्रबन्ध का सामान्य ज्ञान देने के लिए छत्रबन्ध चित्र चुना है। छाते की पदिका (तीलियों की गोलाई) के दोनों भागों में 'ज' से 'थि' तक अक्षर, दण्ड के ऊपर 'आ', पदिका के मूल में 'वा, र्या', दण्ड और पदिका के बीच में 'ल, नं' अक्षर तथा दण्ड के नीचे 'भा' अक्षर रखने से छत्र रूप वस्तु चित्र की रचना होती है, जिसे संलग्न चित्र ग्रन्थ पूर्व पृष्ठ संख्या xvi को देखकर समझा जा सकता है।

आर्या छन्द – जिसके पहले पद में १२, दूसरे में १८, तीसरे में पुनः १२ और चौथे में १५ मात्राएँ हों वह आर्या छन्द है। गणना श्लोक में देखें। श्लोक में रेखांकन द्वारा चित्र अलंकार और आर्या छन्द का उल्लेख है। इसी प्रकार अगले श्लोकों में भी जानना चाहिए। श्लोक का आरम्भ 'जय' शब्द से है, जो मंगल सूचक है।

ऽ ऽ । ।ऽ।।।। ऽ(१२)। ऽ। ऽऽ । ऽ ।।।ऽ ऽ(१८)

कस्त्वं गुहातमसि रे ! सुरोऽस्मि, देवोऽसि नो, सदनुजोऽहम्।

।।ऽ।।।। ऽ ऽ(१२)।।ऽऽ।।।ऽ।ऽ। ।ऽ (१८)

अनुजः सत इति वक्रो-क्तिसुभागीतिरितवान्स्वमम्ब! रिपुः[१] ॥२॥

अन्वयः

रे ! गुहातमसि त्वं कः ? (ऽ) सुरोऽस्मि, (किं) देवोऽसि ? नो अहं स दनुजः (अस्मि), (किं) सतः अनुजः (असि ?) (अस्मि) इति वक्रोक्ति सुभागी रिपुः अम्ब स्वम् (त्वत्) तिरितवान्।

शब्दार्थ –

गुहातमसि – गुफा के अन्धकार में, **वक्रोक्ति** – वक्र (कुटिल, अन्य अर्थ देनेवाली), **उक्ति** – कथन, **सुभागी** – सेवन करने वाली, **तिरितवान्** – छिपाया।

संस्कृत टीका –

॥ क इति॥ भयात्स्वसेनया सह गुहान्धकारं प्रविष्टस्य दैत्यस्य, देवसेनया सह तमनु मारणाय प्रस्थितायाश्च देव्या उक्तिप्रत्युक्ती–रे ! अरे ! गुहातमसि गिरिगुहान्धकारे त्वं कः ? इति देवीप्रश्नः। असुरोऽस्मि दैत्योऽस्मि, इति सयुक्ति दैत्यस्योत्तरम्। अथ 'रेऽसुरोऽस्मि' अत्र पूर्व-पूर्वरूप-रूपसंध्यननुशीलनेन 'सुरोऽस्मि देवोऽस्मि' इत्यर्थं ज्ञातवती देवी पुनराह–देवोऽसि, त्रिदशोऽसि ? किमिति शेषः। नो, न; अहं स (विकटास्यः) दनुजः दैत्यः, अस्मीति शेषः। इति पुनर्दैत्यस्योत्तरम्। अथ 'सतः अनुजः' इत्यर्थं ज्ञातवती भगवती पुनराह। सतः अनुजः ? किमसीति शेषः। इति इत्थं रीत्या वक्रां कुटिलाम् अर्थान्तराभासिनीमिति यावत्, उक्तिं वचनं सुभजति सेवते तथोक्तो रिपुः, शत्रुः, तवेति शेषः। हे अम्ब ! देवि ! स्वमात्मानं तिरितवान् गोपितवान्, त्वदिति शेषः। इत्यर्थः॥

---

१. देवादिकं मत्वा मां न मारयेत् इति स्वरक्षणार्थं युक्त्या दैत्यस्योत्तरं ज्ञेयम्।

इह दैत्यरूपस्याऽन्यस्य वस्तुनः 'असुरोऽस्मि–दैत्योऽस्मि' इत्याद्यन्यार्थकं वाक्यं 'सुरोऽस्मि, देवोऽस्मि' इत्याद्यन्यथा भंगश्लेषेण देवी योजितवतीत्यतो वक्रोक्त्यलंकारः। तल्लक्षणं तु– **'अन्यस्याऽन्यार्थकं वाक्यमन्यथा योजयेद्यदि। भंगश्लेषेण काक्वा वा सा वक्रोक्तिरियं द्विधा'** इति॥

अथ चात्र आर्याप्रथमदलस्येव त्रिंशन्मात्रात्मकस्य द्वितीयस्यापि दलस्य प्रयुक्ततया गीतिवृत्तम्। तल्लक्षणं तु **'आर्याप्रथमदलोक्तं द्वितीयमपि भवति यत्र हंसगते !। छन्दोविदस्तदानीं गीतिं ताममृतवाणि ! भाषन्ते'** इति॥२॥

भाषाटीका –

इस श्लोक में डर से पर्वत-गुहा में भागे हुए दैत्य की ओर उसको मारने को पीछे गई हुई देवी की उक्ति प्रत्युक्ति है–देवी ने कहा, 'अरे ! इस गुफा के अन्धकार में कौन है ?' उसने कहा, 'मैं ऽसुर[1] हूँ'; देवी ने कहा, क्या देव है ? उसने कहा, नहीं, मैं स दनुज (वही दैत्य) हूँ, देवी ने कहा, क्या सत् (सज्जन) का छोटा भाई ? ऐसे हे देवि ! कुटिल उक्ति करके शत्रु ने तुझ से अपनी आत्मा को छुपाई॥२॥

वक्रोक्ति अलंकार –

जिसमें उत्तर देनेवाला व्यक्ति भंग श्लेष या अभंग श्लेष का आश्रय लेकर प्रस्तुत अर्थ से भिन्न अन्य अर्थ कहता है वह वक्रोक्ति अलंकार है। जहाँ प्रस्तुत अर्थ का खण्डन कर दूसरा अर्थ कहे वह भंग श्लेष है और जहाँ उसी पद का अन्य अर्थ निकाल लिया जाय, वह अभंग श्लेष है।

इस श्लोक में भंग श्लेष है। यहाँ देवी से असुर कहता है – सुरोऽस्मि अर्थात् देवता हूँ किन्तु सुर शब्द के पूर्व 'अ' अक्षर है जिसका पूर्व रूप (रे में स्थित ए का रूप) हो जाता है और यह रूप बनता है –

१. 'मुझे सुर जान कर छोड़ देवे' इस विचार से दैत्य ने आधा ही अकार कहा।

रेऽसुरोऽस्मि असुर अर्थ हो जाने से पूर्व अर्थ भंग हो जाता है। पुनः वह उत्तर देता है – सदनुजोऽहम् अर्थात् सत् – सज्जन का, अनुज – छोटा भाई हूँ। किन्तु स+दनुज करने से अर्थ निकलता है – स–वह, दनुज–दैत्य हूँ। इससे पूर्व अर्थ का खण्डन हो जाता है। अतः यहाँ भंग श्लेष होने से कुटिलता पूर्वक कहा गया वक्रोक्ति अलंकार है।

गीति छन्द –

जिसमें आर्या के पूर्वार्द्ध (१२,१८) की तरह उत्तरार्द्ध भी (१२,१८ का) होता है, उसे गीति छन्द कहते हैं।

।।। । ।। ऽ ऽ ऽ(१२)ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ (१५)
दनुतनुजमनु प्रासं, प्रासंप्रासं स्मिताऽम्बाऽव्यात्।
।। ऽ । ऽ । ऽ ऽ(१२)। । । ।ऽ । । । ऽ। । ऽ– (१५)
उपगीतिगीतिगीताऽ–गणितगुणैर्गुणिगणैर्गुणिता ।।३।।

अन्वयः

उपगीतिगीतिगीता अगणितगुणैः गुणिगणैः गुणिता
दनुजतनुजं अनु प्रासं प्रासं-प्रासं, स्मिता अम्बा अव्यात्।

शब्दार्थ –

प्रासं – भाले को, **प्रासं-प्रासं** – फेंक-फेंक कर, **गणितगुणैः** – अगणितगुणवाले, **गुणिगणैः** – गुणियों से, **गुणिता** – गुणगान की गई।

संस्कृत टीका –

॥ दन्विति॥ उपगीतय उपगानानि गीतयो गानानि तैः (करणैः) गीता उत्कीर्तिता अगणिता असंख्याता गुणा यैस्तथाभूता ये गुणिगणाः पण्डितसमूहास्तैः गुणिता स्तुता, तथा दनुजतनुजो दानवो विकटास्यनामा, तमनु तत्पृष्ठत इति भावः। प्रासं कुन्तं प्रासं प्रासं क्षिप्त्वा क्षिप्त्वा, 'आभीक्ष्ण्ये णमुल्' इति णमुल्। स्मिता ईषद् हसिता (सती) 'गत्यर्थाकर्मक०' इत्यादिना कर्तरि क्तः। अम्बा देवी अव्यात् पायादित्यर्थः॥

अत्र पूर्वार्धे तुल्यश्रुतीनां 'दनु तनु मनु' इत्याद्यक्षराणाम्, उत्तरार्द्धे च पूर्वं गकारतकारयोस्ततो गकारणकारयोश्चावृत्त्या कान्तिगुणस्फुरणेन चाऽनुप्रासोऽलंकारः। तत्र 'दनु तनु मनु' इत्यादौ अतत्पदतया छेकानुप्रासः ; 'प्रासं प्रासं' इत्यादौ च तत्पदावृत्त्या लाटानुप्रासः। तल्लक्षणं तु **'तुल्यश्रुत्यक्षरा वृत्तिरनुप्रासः स्फुरद्गुणः। अतत्पदः स्याच्छेकानां लाटानां तत्पदश्च सः'** इति॥

अपि चात्र प्रथमार्द्धस्याऽपि आर्योत्तरार्द्धवत् (सप्तविंशतिमात्रान्विततया) प्रयुक्तत्वादुपगीतिवृत्तम्। तल्लक्षणं तु **'आर्योत्तरार्धतुल्यं प्रथमार्धमपि प्रयुक्तं चेत्। कामिनि ! तामुपगीतिं प्रतिभाषन्ते महाकवयः'** इति॥३॥

भाषाटीका –

गीत और उपगीतों से गुण गाने वाले भक्तों से स्तुति की गई, और अपने शत्रु दैत्य के पीछे भाले को फैंक फैंक कर कुछ मुसकराती हुई देवी रक्षा करे॥३॥

अनुप्रास अलंकार –

समान (तुल्य) श्रवण (श्रुति) होने वाले अक्षरों की आवृत्ति हो और उनमें औदार्य आदि गुण हों तो उसे अनुप्रास अलंकार कहते हैं। छेक और लाट इसके भेद हैं।

१. **छेकानुप्रास** – भिन्न पद (अतद्पद) के होने पर भी समान श्रवण हो वह छेकानुप्रास है। छेक अर्थात् बुद्धिमानों को प्रिय होने से इसका नाम छेकानुप्रास है। श्लोक के पूर्वार्द्ध में 'दनु तनु मनु' में नकार की आवृत्ति और उत्तरार्द्ध में गकार, तकार और णकार की आवृत्ति होने और कान्ति गुण से युक्त होने से छेकानुप्रास है।

२. **लाटानुप्रास** – वही पद (तत्पद) बार-बार आवे तो लाटानुप्रास होता है। लाट देशवासियों को प्रिय होने से इसका नाम

लाटानुप्रास है। श्लोक में बार-बार आने वाला यही पद 'प्रासं प्रासं प्रासं' लाटानुप्रास है।

उपगीति छन्द –

आर्या छन्द के उत्तरार्द्ध की तरह अर्थात् १२,१५ की मात्राओं वाला यदि पूर्वार्द्ध भी हो तो उसे उपगीति कहते हैं अर्थात् उपगीति में क्रमशः १२,१५,१२,१५ मात्राएँ होती हैं।

ऽ ।। ऽऽ ऽ । । ऽ ऽ
द्येद् यमक ष्टं, शस्तपदाऽर्या।
ऽ ।।ऽ ऽ ऽ। । ऽ ऽ
साऽक्षरपंक्ति–शस्तपदाऽऽर्या ।।४।।

अन्वयः

शस्तपदा आर्या (तथा) सा अक्षरपंक्तिशस्तपदा आर्या, (मम) यमकष्टं द्येत्।

शब्दार्थ –

शस्तपदा – कल्याण का स्थान, जिनके चरण प्रशंसित अथवा वन्दित हैं, **साक्षरपंक्ति** – पण्डितों से वन्दित, **आर्या** – पूज्या, पार्वती, **यमकष्टं** – यमयातना, **द्येत्** – काटे।

संस्कृत टीका –

।। द्येदिति।। शस्तं कल्याणं 'कुशलं क्षेममस्त्रियाम्। शस्तं च' इत्यमरः। तदेव पदं स्थानं यस्याः सा, आर्या स्वामिनी, तथा साक्षराणां पण्डितानां पंक्त्या शस्ते स्तुते पदे चरणौ यस्याः सा तथाभूता, आर्या देवी; यमकष्टं यमकृतां पीडां, द्येत् खण्डयत्वित्यर्थः। द्येदिति दोधातोर्विधिलिङि रूपम्। 'ओतः श्यनि' इति ओलोपः।।

अत्र द्वितीयपादस्य चतुर्थपादे भिन्नार्थतयाऽऽवृत्तेः सत्त्वाद् यमकमलंकारः। तल्लक्षणं–'स्यात्पादपदवर्णनामावृत्तिः संयुताऽयुता।

यमकं भिन्नवाच्यानामादिमध्यान्तगोचरम्' इति।

किञ्चात्र प्रतिपादं[१] आद्यचतुर्थपञ्चमवर्णानां गुरुत्वात्तदन्ययोश्च द्वितीयतृतीययोरक्षरयोर्लघुतया अक्षरपंक्तिवृत्तम्। तल्लक्षणं '**आद्यचतुर्थं, पञ्चमकं चेत्। यत्र गुरु स्यात्, साऽक्षरपंक्तिः॥**' इति॥४॥

भाषाटीका –

कल्याणों की स्थान, जिसके चरण पण्डितों से वन्दित हैं वह पूज्या पार्वती देवी यमराज की पीडा को दूर करे।

यमक अलंकार –

भिन्न-भिन्न अर्थवाले पाद, पद (शब्दों) अथवा वर्णों (अक्षरों) की आवृत्ति (बार-बार आने) को यमक अलंकार कहते हैं। संयुता और युता के भेद से यह दो प्रकार का होता है।

१. **संयुता** – जिसके बीच में अन्य पद न हों।
२. **युता** – जिसके बीच अन्य पद हों। आदि, मध्य और अन्त्य गोचर होने से इनके तीन-तीन भेद हैं – आदिगोचर – आदियमक, मध्यगोचर – मध्ययमक और अन्त्य गोचर – अन्त यमक। यमक श्लोक के प्रत्येक चरण में देखा जा सकता है। यदि चारों पदों की आवृत्ति हो तो वह महा यमक होता है।

प्रस्तुत श्लोक में 'शस्तपदाऽर्या', की आवृत्ति दूसरे और चौथे चरणों में हुई है किन्तु उनके अर्थ भिन्न हैं जिससे यह यमक अलंकार का उदाहरण है।

अक्षरपंक्ति छन्द –

जिसमें पहला, चौथा और पाँचवाँ वर्ण गुरु हों वह अक्षरपंक्ति छन्द होता है।

---

१. एवं सर्वत्र प्रतिपादं ज्ञेयम्।

। । । । ऽ ऽ । । । । ऽ ऽ
करधृतशूलाऽ–वतु गिरिजाति।

। । । । ऽ ऽ । । । । ऽ ऽ
हरिमधिरूढा शशिवदना सा ॥५॥

अन्वय:

करधृतशूला हरिं अधिरूढ़ा शशिवदना सा गिरिजा अति अवतु।

शब्दार्थ –

हरिमधिरूढ़ा – सिंहवाहिनी, **गिरिजा** – पार्वती,
अति – अतिशय, **अवतु** – रक्षा करे।

संस्कृत टीका –

॥करेति॥ करेण पाणिना धृतं धारितं शूलं यया सा, हरिं सिंहमधिरूढाऽध्यासिता। ''हरिर्विष्णावहाविन्द्रे भेके सिंहे हये रवौ। चन्द्रे कीले प्लवङ्गे च यमे वाते च कीर्त्तित:'' इति नानार्थकोश:। तया शशिवच्चन्द्रवद्वदनं मुखं यस्या: सा तथोक्ता, सा प्रस्तुता गिरिजा देवी, अति अतिशयेन, अवतु रक्षतु। इत्यर्थ:॥

इह अक्रियस्य देवीरूपस्य पदार्थस्य शूलधारण – सिंहारोहणादिरूपेण स्वभावस्योक्तेर्जातिरलंकार:। तल्लक्षणं तु **'स्वभावोक्ति: पदार्थस्य सक्रियस्याऽक्रियस्य वा। जातिर्विशेषतो**[१] **रम्या हीने तत्रार्भकादिषु॥'** इति॥

अपि चात्र पूर्वतश्चतुर्णामक्षराणां लघुतया, ततो द्वयोर्गुरुतया शशिवदनावृत्तं ज्ञेयम्। तल्लक्षणं **'अगुरु चतुष्कं भवति गुरू द्वौ। घनकुचयुग्मे शशिवदनाऽसौ॥'** इति॥५॥

भाषा टीका –

हाथ में शूल को धारण करने वाली, सिंह पर बैठी हुई, चन्द्र के समान मुख वाली, वह देवी अत्यन्त रक्षा करे॥५॥

जाति या स्वभावोक्ति अलंकार – (इसके पूर्व शब्दालंकार थे, जाति

१. अत्र 'विशेषत:' इति कथनं नियमाभावं दर्शयति अत एव केचिदेवं नोचु:।

से लेकर परवर्त्ती सभी अर्थालंकार हैं।)

क्रिया सहित या क्रिया रहित पदार्थ का सहज (जैसा है वैसा ही) वर्णन जाति या स्वभावोक्ति अलंकार कहलाता है। इसमें अच्छा या बुरा जैसा है, वैसा ही वर्णन किया जाता है। हीन है तो हीन का स्वभाव जैसे भील, चाण्डाल आदि का। डरा है तो डरे का स्वभाव जैसे बालक आदि का यथावत् 'वर्णन'। उल्लेखनीय यह है कि वाग्भट को छोड़कर अन्य किसी आचार्य ने 'विशेष' को इसके नियम में शामिल नहीं किया है।

इस श्लोक में क्रिया रहित पदार्थ का सहजवर्णन है क्योंकि सिंहवाहिनी, शूलधारिणी देवी का जैसा सहज स्वरूप है उसी का वर्णन है, अतः यह जाति अलंकार है।

शशिवदना छन्द –

प्रथम चार अक्षर लघु, फिर दो अक्षर गुरु हों तो वह शशिवदना छन्द होता है।

ऽ ऽ ऽ । । ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । । ऽ ऽ

भास्वद्भा उपमा या; हन्ति ध्वान्तवदेनः।

ऽ ऽ ऽ । । ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । । ऽ ऽ

सा मातेव सुपुत्राऽ–म्बाऽव्यात् सोन्मदलेखा॥६॥

अन्वयः

भास्वद् भा उपमा या ध्वान्तवद् एनः हन्ति, सा सपुत्रा सोन्मदलेखा अम्बा (मां) माता इव अव्यात्।

शब्दार्थ –

भास्वत् – सूर्य, **भाः** – कान्ति, **ध्वान्त** – अन्धकार, **एनः** – पाप, **सोन्मद** – प्रसन्नता सहित, **लेखा** – देवता।

संस्कृत टीका –

॥भास्वदिति॥ भास्वतः सूर्यस्य भाः कान्तिः सा एव उपमोपमानं

'यस्याः' सा तथोक्ता। सूर्यकान्तिसदृशीत्यर्थः। 'सदृक्षः सदृशः सदृक्। निभसंकाशनीकाशप्रतीकाशोपमादयः' इति कोशः। या (देवी) ध्वान्तवदन्धकारमिव एनः पापं हन्ति नाशयति। सा, सपुत्रा तनयान्विता मातेव जननीव सोन्मदलेखा प्रमुदितदेवसहिता 'लेखा अदितिनन्दनाः' इत्यमरः। अम्बा देवी, अव्यात्पायादित्यर्थः॥

अत्र पूर्वार्द्धे देवीरूपोपमेयस्य सूर्यकान्तिरूपेणोपमानेन; पापरूपोपमेयस्य च ध्वान्तरूपेणोपमानेन; उत्तरार्धे च देवसहितदेवी-रूपोपमेयस्य पुत्रसहितमातृरूपोपमानेन सादृश्यदर्शनादुपमालंकारः। स चाऽत्र तुल्यार्थाव्ययदर्शितोज्ञेयः। तल्लक्षणं तु **'उपमानेन सादृश्यमुपमेयस्य यत्र सा। प्रत्यैयाव्ययतुल्यार्थसमासैरुपमा मता॥'** इति॥

अथ चात्र चतुर्थ–पञ्चमानां वर्णानां प्रतिपादं लघुत्वात्तदन्येषां गुरुतया च मदलेखावृत्तम्। तल्लक्षणं तु **'तुर्ये पञ्चमकं चेद्, यत्र स्याल्लघु बाले !। विद्वद्भिर्मृगनेत्रे !, प्रोक्ता सा मदलेखा'** इति॥६॥

भाषा टीका –

जो (देवी) सूर्य के कान्ति जैसी, अन्धकार जैसे पाप को दूर करती है; पुत्र सहित माता जैसी, हर्षित देवों सहित वह देवी रक्षा करे॥६॥

उपमा अलंकार –

जिसमें प्रत्यय (वत् आदि), अव्यय (इव आदि), तुल्यार्थ (तुल्य, सदृश, निभ, संकाश और प्रतिकाश आदि) तथा समास (कर्मधारय) के द्वारा उपमेय की उपमान के साथ समानता बताई जाय उसे उपमा अलंकार कहते हैं।

मदलेखा छन्द –

जिसमें चौथा और पाँचवाँ अक्षर लघु हो अन्य गुरु हों वह मदलेखा छन्द है।

ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ । ऽ

नाभ्यावर्त्ता सुदृङ्मीनां, कपोलपुलिनां शुभाम्।

ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ । ऽ

<u>रूपका</u>मीश्वरीगङ्गां तामुप<u>श्लोक</u>येऽमलाम्॥७॥

अन्वयः

नाभ्यावर्त्तां सुदृङ्मीनां कपोलपुलिनां-रूपकां शुभां अमलां तां ईश्वरीं गङ्गां उपश्लोकये।

शब्दार्थ –

आवर्त – भँवर, **पुलिनं** – तट, **रूपकां** – रूप ही 'जल (क') वाली, **उपश्लोकये** – स्तुति करता हूँ।

संस्कृत टीका –

॥नाभीति॥ नाभिरेवावर्त्तो जलभ्रमो यस्याः सा तथोक्ता तां, सुशोभनौ दृशावेव मीनौ यस्याः (स्यां) सा तथाभूता तां, कपोल एव पुलिनं यस्याः सा तथोक्ता ताम्, रूपं लावण्यमेव कं जलं यत्र सा तथाभूता ताम्, ''मारुते वेधसि ब्रध्ने पुंसि कः कं शिरोऽम्बुनोः'' इत्यमरः। शुभां कल्याणकारिणीं मनोज्ञां वाऽमलां निर्मलां ताम्, ईश्वरी देवी सैव (पावनतया) गंगा भागीरथी ताम्; उपश्लोकये श्लोकैरुपस्तुवे वर्णये इति भावः। ''सत्यापपाश०'' इति णिच्। इत्यर्थः॥

अत्र गांभीर्यादिसाधर्म्यान्नाभ्यावर्त्तयोः नेत्रमीनयोः, कपोलपुलिनयोः, रूपजलयोः, तदङ्गि देवीगङ्गयोश्चाभेददर्शनाद्रूपकमलंकारः। तच्च रूपकं 'नाभ्यावर्त्ता' इत्यादिरूपेण समासदर्शनात्समस्तं, देवीगङ्गयोश्च तदङ्गभूतनाभ्यावर्त्तादिरूपेण खण्डतया वर्णनात्खण्डं च ज्ञेयम्। तल्लक्षणं **'रूपकं यत्र साधर्म्यादर्थयोरभिदा भवेत्। समस्तं वाऽसमस्तं वा, खण्डं वाऽखण्डमेव वा'** इति॥

अपि चात्र सर्वत्र पादेषु षष्ठस्य वर्णस्य गुरुत्वात्पञ्चमस्य च लघुत्वाद्, द्वितीयचतुर्थपादयोश्च सप्तमवर्णस्य ह्रस्वत्वात्तदन्ययोश्च प्रथमतृतीयपादयोः सप्तमवर्णस्य दीर्घतया श्लोकवृत्तं ज्ञेयम्। तल्लक्षणं तु **'श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं, सर्वत्र लघु पञ्चमम्। द्विचतुःपादयोर्ह्रस्वं, सप्तमं दीर्घमन्ययोः॥'** इति॥७॥

भाषा टीका –

नाभिरूप आवर्तवाली, अच्छे नेत्ररूप मत्स्यवाली, कपोलरूप

पुलिनवाली, लावण्यरूप जलवाली, मनोहर, निर्मल उस गङ्गारूपी देवी की स्तुति करता हूँ॥७॥

रूपक अलंकार –

जिसमें समान धर्म (सादृश्य) होने के कारण दोनों अर्थों में अभेद हो, उसे रूपक अलंकार कहते हैं। इसके चार भेद हैं – १. समस्त २. असमस्त ३. खण्ड ४. अखण्ड।

यहाँ गाम्भीर्य के सादृश्य से नाभि और भंवर में, सुन्दर समान धर्म होने से नेत्र और मीन में, उभरे गोलाई के सादृश्य से गाल और नदी–तट में, सौन्दर्य सादृश्य से रूप और जलमें अभेद होने से देवी और गंगा में अभेद रूपक अलंकार है। भंवर आदि गंगा का अंग होने होने से खण्ड रूपक अलंकार भी जानना चाहिए।

श्लोक छंद –

श्लोक छंद के चारो चरणों में छठा वर्ण गुरु और पाँचवाँ लघु होता है। दूसरे और चौथे चरणों में सातवाँ वर्ण लघु और प्रथम तथा तृतीय चरणों में सातवाँ वर्ण गुरु होता है।

। ऽ । । । ऽ ऽ । । । ऽ ऽ । ऽ । ऽ

भ्रमन्त्यपि मनःस्फूर्तिः प्रतिवस्तूपमात्रियात्।

। ऽ । ऽ । । । ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ

षट्पद्यपास्य नलिनीं द्रुपत्त्राणि भजेत किम्॥८॥

अन्वयः

प्रतिवस्तु भ्रमन्ति अपि मनः स्फूर्तिः उपमातृ इयात्। किं षट्पदी नलिनीं अपास्य द्रुपत्राणि भजेत्।

शब्दार्थ –

प्रति वस्तु – एक वस्तु से दूसरी वस्तु पर, **उपमातृ** – माता के समीप, **मनः स्फूर्तिः** – चित्तवृत्ति, **इयात्** – जाना चाहती है, **षट्पदी** – भ्रमरी, **अपास्य** – छोड़कर, **द्रुपत्राणि** – पेड़ के पत्ते।

संस्कृत टीका –

॥ भ्रमन्तीति॥ वस्तु वस्तु प्रतीति प्रतिवस्तु, प्रत्येकं वस्तु इति भावः। भ्रमन्ती गच्छन्त्यपि मनःस्फूर्त्तिश्चित्तवृत्तिः, उपमातृ, माता अम्बा देवीति यावत्, तस्याः समीपमुपमातृ इयात् गच्छेत्, आश्रयेदिति भावः। अत्र विधौ सम्भावनायां वा लिङ्। एतदेव प्रतिवस्तूपमिमीते उत्तरार्द्धेन–षडिति किं षट्पदी भ्रमरी, नलिनीं कमलिनीम्, अपास्य विहाय, द्रुपत्राणि तरुदलानि, भजेत् आश्रयेत् ? न कदापीति भावः। एवमेव मनोवृत्तिर्देवीमपहाय किमन्यानि वस्तून्याश्रयेत् ? न कदापीति भावः। इत्यर्थः॥

इह साम्यवाचकानामिवादीनामनुपात्तौ सत्याम्, अन्य-वस्त्वनादरपुरःसरं देवीसमीपाश्रयणोद्यतस्य मनःस्फूर्त्तिरूपस्य वस्तुनः वृक्षपत्रानादरपूर्वकं कमलिन्याश्रयणोद्यतेन भ्रमरीरूपेण प्रतिवस्तुना साम्यं प्रतीयतेऽतः प्रतिवस्तूपमालङ्कारः। तल्लक्षणं तु **'अनुपात्ताविवादीनां, वस्तुनः प्रतिवस्तुना। यत्र प्रतीयते साम्यं, प्रतिवस्तूपमा तु सा॥'** इति॥

किञ्चाऽत्र चतुर्षु पादेषु पञ्चमवर्णस्य लघुत्वात्, द्वितीयचतुर्थपादयोश्च सप्तमस्य लघुत्वात्षष्ठस्य च गुरुत्वात्पद्यनाम वृत्तम्। तल्लक्षणं **'पञ्चमं लघु सर्वत्र, सप्तमं द्विचतुर्थयोः। षष्ठं गुरु विजानीयादेतत्पद्यस्य लक्षणम्॥'** इति। अत्र षष्ठं गुरु विजानीयात् इत्यस्य 'द्विचतुर्थयोः' इत्यनेन सहैवान्वयः कार्यः। क्वचित्तु 'षष्ठं गुरु सर्वत्र' इति व्याचख्युः, तन्न; एवं कृते श्लोक-पद्ययो-ऐक्यापत्तेर्दर्शनात्। अत एव मूले तृतीयपादे 'नलिनी' इत्यत्र षष्ठस्य नकारस्य लघुत्वदर्शनादनयोर्भेदः स्फुटतया सूचितः॥८॥

भाषा टीका –

प्रत्येक वस्तुओं में भ्रमण करती हुई भी चित्त की वृत्ति को आशा है कि देवी के पास जावे। अर्थात् देवी का आश्रय ले। क्या भ्रमरी कमलिनी को छोड़कर वृक्ष के पत्तों में बैठे ? अर्थात् कभी नहीं। ऐसी चित्तवृत्ति भी देवी की ही शरण ले॥॥८॥

प्रतिवस्तूपमा अलंकार –

इव, यथा आदि सादृश्य बोधक शब्दों के न कहने (अनुपात्तता); पर भी जहाँ वस्तुओं में साम्य (प्रतिवस्तुता) प्रतीत हो, उसे प्रतिवस्तूपमा अलंकार कहते हैं।

इस श्लोक में इव आदि साम्य वाचक शब्दों का कथन न करते हुए, दूसरी वस्तु का अनादर भी न करते हुए देवी के पास आने के लिए उद्यत चित्तवृत्ति रूपी वस्तु का पेड़ के पत्ते का अनादर करते हुए कमलिनी के आश्रय के लिए उत्सुक भ्रमरी रूप समान वस्तु में समता होने के कारण प्रतिवस्तूपमा अलंकार है।

पद्य छन्द –

चारों चरणों में पाँचवाँ वर्ण लघु हो। दूसरे और चौथे चरणों में सातवाँ लघु और छठा गुरु होने से पद्य छन्द होता है। कुछ लोगों ने चारों चरणों में छठा गुरु होना अर्थ लगाया है किन्तु ऐसा होने पर श्लोक और पद्य में समता हो जायेगी। इसीलिए नलिनी में छठे वर्ण नकार को लघु दिखाकर दोनों के अन्तर को स्पष्ट किया गया है।

ऽ । ।ऽऽ।। ऽ ऽ। ।ऽ ऽ।।ऽ
भ्रान्तिमतामुत्तम ! यद्, वेत्सि शिवां जातिलताम्।
ऽ । । ऽ ऽ ।।ऽ ऽ।। ऽ ऽ।। ऽ
साध्विह तत् स्वं हृदलि-माणवकाक्रीडय भोः ॥९॥

अन्वयः

भोः भ्रान्तिमतां उत्तम ! हृद् अलि माणवक ! यद् (त्वं) शिवां जातिलतां वेत्सि, तत् साधु। इह स्वं आक्रीडय।

शब्दार्थ –

भ्रान्तिमतां – विचरण करनेवालों में,
अलिमाणवकः – भौंरे का बच्चा, **जातिलतां** – माधवी लता को

संस्कृत टीका –

॥भ्रान्तीति॥ भो भ्रान्तिमतां भ्रमणशीलानामुत्तम ! श्रेष्ठ ! हृदेव मन एव अलिमाणवकः भ्रमरबालस्तत्संबुद्धौ हे हृदलिमाणवक ! "बालस्तु

स्यान्माणवकः'' इत्यमरः। इह माणवकशब्देन मुग्धत्वबाहुल्यं प्रकटितम्। यत्त्वं शिवां देवीं, जातिलतां माधवीलतां, (गौरतया) वेत्सि जानासि, तत् साधु शोभनम्। तत्तव लाभकारकमिति भावः। इह अस्यां देवीरूपायां जातिलतायां, स्वम् आत्मानमाक्रीडय रमय। तत्र निरतो भवेत्यर्थः॥

अत्र अन्यच्च देवीरूपवस्तुनि तत्तुल्यस्याऽन्यस्य जातिलतारूपस्य वस्तुनो मनोभ्रमरबालकृतो निश्चयो जायतेऽतो भ्रान्तिमदलंकारः। तल्लक्षणं **'वस्तुन्यन्यत्र कुत्राऽपि, तत्तुल्यस्यान्यवस्तुनः। निश्चयो यत्र जायेत, भ्रान्तिमान् स स्मृतो यथा॥'** इति॥

अथ चात्र प्रथम-चतुर्थ-पञ्चमान्तिमवर्णानां गुरुतया शेषाणां च लघुतया माणवकाक्रीडाख्यं वृत्तम्। तल्लक्षणं **'आदिगतं तुर्यगतं, पञ्चमकं चान्त्यगतम्। स्याद्गुरु चेत्तत्कथितं, माणवकाक्रीडमिदम्॥'** इति॥९॥

भाषा टीका –

हे भ्रमण करने वालों में श्रेष्ठ ! भ्रमर-बालक ! जो कि तू इस देवी को (गौरपन से) चँवेरी (चमेली)लता जानता है। वह ठीक है। तू इस देवीरूप चँवेरी में खूब क्रीडा कर॥९॥

भ्रान्तिमान् अलंकार – जहाँ किसी अन्य वस्तु में उसके समान अन्य वस्तु का निश्चय जाना जाय, वहाँ भ्रान्तिमान् अलंकार जानना चाहिए।

प्रस्तुत श्लोक में भौरे का बच्चा देवी के रूप को माधवी लता समझ लेता है। इस भ्रम के कारण भ्रान्तिमान् अलंकार है।

माणवकक्रीड छन्द – जिसमें प्रथम, चतुर्थ, पंचम और अन्तिम वर्ण गुरु हों, वह माणवक क्रीड छन्द है।

। ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ

अभीष्टदाऽऽगआक्षिपा महेश्वरी यदि स्थिता।

। ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ

तदा नगस्वरूपिणी वृथाऽस्ति कल्पवल्लिका॥१०॥

अन्वयः

यदि अभीष्टदा आगआक्षिपा महेश्वरी स्थिता (अस्ति), तदा नगस्वरूपिणी कल्पवल्लिका वृथा अस्ति।

शब्दार्थ –

अभीष्टदा – इच्छित फल देनेवाली, **आग(स्)** – पाप, **आक्षिपा** – नाश करनेवाली, **नगस्वरूपिणी** – वृक्ष स्वरूपिणी

संस्कृत टीका –

॥अभीति॥ यदि चेत्, अभीष्टदा वाञ्छितार्थदायिनी, तथा आक्षिपतीति आक्षिपा, आगसां पापानामपराधानां वाऽऽक्षिपा नाशिकेति आगआक्षिपा पापनाशिनीत्यर्थः। महेश्वरी देवी स्थिता विराजिता, अस्तीति शेषः। तदा, न गच्छतीति नगः 'नगोऽप्राणिषु' इति नञः प्रकृतिवद्भावः। स नग एव स्वस्यात्मनो रूपमस्या अस्तीति नगस्वरूपिणी वृक्षाकृतिरित्यर्थः। कल्पवल्लिका कल्पलता वृथा व्यर्थम् अस्ति वर्त्तते। अभीष्टदायां पापनाशिन्यां च देव्यां सत्यां न किमपि कल्पलतायाः प्रयोजनमिति भावः। इत्यर्थः॥

अत्र महेश्वरीसद्भावेन कल्पवल्लीरूपवस्तुनः प्रतिषेधस्योक्तत्वादाक्षेपालंकारः। तल्लक्षणं तु **'उक्तिर्यत्र प्रतीतिर्वा, प्रतिषेधस्य जायते। आचक्षते तमाक्षेपाऽलंकारं विबुधा यथा॥'** इति। अत्र आक्षेपोऽलंकारः 'आगआक्षिपा' इति आक्षिपाशब्देन कथं सूचितः ? इति न शंकनीयं, अस्मिन्वृत्ते आक्षेपशब्दस्यागमनाऽसम्भवेन तद्वाचकस्य 'आक्षिपा' शब्दस्यैव युक्त्या वर्णितत्वादिति॥

अपि चाऽत्र द्वितीय-चतुर्थ-षष्ठाष्टमानां वर्णानां प्रतिपादं गुरुत्वादन्येषां च लघुत्वेन नगस्वरूपिणीवृत्तम्। तल्लक्षणं तु **'द्वितुर्यषष्ठमष्टमं, गुरु प्रयोजितं यदा। तदा निवेदयन्ति तां, बुधा नगस्वरूपिणीम्॥'** इति॥१०॥

भाषा टीका –

यदि मनोवांछित पूरण करने वाली और पाप का नाश करने वाली देवी विराजमान है तो जड़स्वरूप वाली यह कल्पलता वृथा है॥१०॥

आक्षेप अलंकार – जिसमें प्रतिषेध (निषेध या मना करने)की उक्ति (कथन) हो अथवा विना कथन के ही प्रतीत हो, वह आक्षेप अलंकार है।

श्लोक में देवी के रूप के होते हुए कल्पलता का प्रतिषेध कथन है।

नगस्वरूपिणी छन्द –

जिसके प्रत्येक चरण में दूसरा, चौथा, छठा और आठवाँ अक्षर गुरु हो वह नगस्वरूपिणी छन्द है। यह आठ अक्षरों का छन्द होता है।

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

दुर्गे ! प्रोद्यद्भासं देहं, दृष्ट्वा ते ज्ञा इत्यूहन्ते।

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

विद्युन्माला किं वार्की भा, नेहौष्म्यं[1] त्वा देव्या मूर्तिः॥११॥

अन्वयः

दुर्गे ! ज्ञाः ते प्रोद्यद् भासं देहं दृष्ट्वा इति ऊहन्ते – किं विद्युन्माला ? वा आर्की भाः ? तु न इह औष्म्यं, न (वर्त्तते) आः (इदं) देव्या मूर्तिः (वर्त्तते)

शब्दार्थ –

ज्ञाः – ज्ञानी लोग, **प्रोद्यद् भासं** – फैलती हुई कान्ति, **ऊहन्ते** – अनुमान करते हैं, **औष्म्यम् या औष्ण्यम्** – गर्मी, **विद्युन्माला** – बिजली की पंक्ति, **आर्की** – सूर्य की

संस्कृत टीका –

॥दुर्गे इति॥ हे दुर्गे ! देवि ! ज्ञाः पण्डिताः, ते तव, प्रोद्यती उच्छलन्ती भाः कान्तिर्यस्मात्तथाभूतस्तं देहं दृष्ट्वा वीक्ष्य, इति वक्ष्यमाणप्रकारेण ऊहन्ते तर्कयन्ति। कथमित्याह–किं विद्युन्माला तडिदावली ? वाऽथवा आर्की सूर्यसम्बन्धिनी भाः कान्तिः ? तु परन्तु, इह दृश्यमाने वस्तुनि औष्म्यम् उष्णता न वर्त्तत इति शेषः। आः ज्ञातम्। देव्या दधिमथ्याः मूर्त्तिस्तनुः वर्त्तत इति शेषः । इत्यर्थः॥

१. 'ष्ण्यम्' इत्यपि पाठः।

इह प्रसरत्कान्तेर्देवीदेहस्य विद्युन्मालादिना साम्यात् किमेतदिति रीत्या संदेहप्रतीते संशया–(संदेहा) लंकार:। स च विद्युन्मालादौ संदेहे जाते, उष्णत्वाभावहेतुना च तद्भङ्गे देव्या मूर्त्तिरिति निश्चयेन निश्चयान्तो ज्ञेय:। तल्लक्षणं– **'इदमेतदिदं वेति साम्याद् बुद्धिर्हि संशय:। हेतुभिर्निश्चय: सोऽपि निश्चयान्त:स्मृतो यथा'** इति। ननु वाग्भटालंकारे तु "आक्षेपोऽथ संशय:" इति संशयनाम्नाऽयमलंकारो निर्दिष्ट:, मूले च 'भासं देहं' इति संदेहनाम्ना कथं सूचित: ? इति नैव शक्यम्; अवश्यरचनीय-विद्युन्मालाच्छन्दसा विरचितेऽत्र सर्वदीर्घवर्णे पद्ये 'संशय' इति पदस्य कथमप्यागमनशक्तेरसंभवात्, संदेहनाम्नाऽपि च तस्य महाकविश्रीविश्वनाथादिभि: संमतत्वात्तथा कृते न दोष:।।

अथ चात्र सर्वेषां वर्णानां दीर्घत्वात्, चतुर्भिश्चतुर्भिश्च विश्रामसम्भवेन विद्युन्मालावृत्तम्। तल्लक्षणं तु **'सर्वे वर्णा दीर्घा यस्यां, विश्राम: स्याद्वेदैर्वेदै:। विद्वद्वृन्दैर्वीणावाणि ! व्याख्याता सा विद्युन्माला।।'** इति।।११।।

भाषा टीका –

हे देवि ! पण्डित लोग, परिपूर्ण कान्तिवाली आप की मूर्ति को देख कर ऐसी शंका करते हैं। क्या यह बिजलियों की पंक्ति है ? वा सूर्य की कान्ति है ? परन्तु इसमें ताप नहीं है। अरे ! इसीलिए जाना कि यह देवी तुम्हारी मूर्ति है।।११।।

संशय या संदेह अलंकार –

साधारण धर्मों की समानता होने से सामने दिखाई देने वाली वस्तु में यदि शंका पैदा हो कि 'यह वस्तु यह है? अथवा यह न होकर यह (दूसरी वस्तु) है' तो उसे संदेह अलंकार कहते हैं। पर्याय होने से इसे संशयालंकार भी कहते हैं। कारण बताने से निश्चय रूप में बदल जाने पर निश्चयान्त संशय कहा जाता है।

यहाँ दधिमथी देवी के शरीर से फैलती हुई कान्ति का

विद्युन्माला से समानता होने से विद्युन्माला का संदेह होने पर देवी के शरीर में उष्णता का अभाव है, यह कारण बताकर निश्चय किया जाता है कि यह विद्युन्माला नहीं, यह देवी की मूर्ति है, अतः यहाँ निश्चयान्त संशय अलंकार है।

चूँकि विद्युन्माला छन्द में सभी वर्ण दीर्घ होते है इसलिए छन्द में लघु वर्णोवाला संशय शब्द न आ सकने के कारण वाग्भट ने संशय के स्थान पर संदेह लिखा। विश्वनाथ आदि महाकवियों ने भी इसका समर्थन किया है।

विद्युन्माला छंद –

विद्युन्माला ८ अक्षरों का छन्द है। इसमें सभी अक्षर दीर्घ होते हैं और चार, चार वर्णों पर विराम होता है।

ऽ।।ऽऽ ऽ।। ऽऽ
भूषणदृष्टां तत्त्विन इष्टां
ऽ। ।ऽ ऽ ऽ। ।ऽऽ
वीक्ष्य तनुं ते देवि ! भजन्ते।
ऽ।। ऽ ऽ ऽ ।। ऽ ऽ
चंपकमालां सत्सुमजालां
ऽ। ।ऽ ऽ ऽ।। ऽऽ
प्राप्य ससंगाः स्युर्नहि भृङ्गाः ॥१२॥

अन्वयः

देवि ! तत्त्विनः भूषणदृष्टां इष्टां ते तनुं वीक्ष्य भजन्ते। भृङ्गाः सत्सुमजालां चम्पकमालां प्राप्य (किं) ससङ्गा न हि स्युः।

शब्दार्थ –

भूषणदृष्टां – आभूषणों से सुसज्जित देखी गई,

इष्टां तनुं – प्रिय मूर्ति को, **सत्सुमजालां** – सुन्दर फूलों के समूहों की, **चम्पकमालां** – चम्पा की माला को,

ससंगा – साथ में संलग्न

संस्कृत टीका –

॥भूषणेति॥ हे देवि ! दधिमथि ! तत्त्विनस्तत्त्वान्वेषिणः, भूषणैराभरणैर्दृष्टां विलोकितां यद्वा, दृष्टानि भूषणानि यत्र सा, ताम्। 'वाहिताग्न्यादिषु' इति वचनाद्भूषणस्य प्राक् प्रयोगः। अत एव इष्टां प्रियां, ते तव, तनुं मूर्तिं, वीक्ष्य दृष्ट्वा, भजन्ते सेवन्ते। न तु तां वीक्ष्याऽन्यत्र व्यापृता भवंतीति भावः। एतदेव दृष्टांतयति उत्तरार्द्धेन–भृङ्गा भ्रमराः। सत्सुमजालां विद्यमानकुसुमप्रकरां, चम्पकमालां हैमपुष्पकावलीं, प्राप्य लब्ध्वा, ससङ्गा मेलसहितास्तन्निलीना इति भावः। नहि न स्युर्भवेयुः। किमिति शेषः। अपि तु स्युरेव। यथा सुपुष्पितां चंपकमालां प्राप्य भ्रमरा अन्यत्र न गच्छन्ति, तथैव देवीं दृष्ट्वा तत्त्वान्वेष्टारोऽन्यत्र न गच्छंति, किंतु सेवंत एवेति भावः। इत्यर्थः॥ अत्र भूषणभूषितदेवी-मूर्तिदर्शन-पूर्वक–पण्डितकृततद्भजनरूपस्य स्वस्य वस्तुनः तथा पुष्पजालविशिष्ट-चम्पक-माला–प्राप्तिपूर्वक–भ्रमरकृततदासक्तिरूपस्याऽन्य-वस्तुना क्रिययाऽन्वय-ख्यापनं वर्त्तितेऽतो दृष्टान्तालंकारः। तल्लक्षणं तु **'अन्वयख्यापनं यत्र क्रियया स्वतदन्ययोः। तं दृष्टान्तमिति प्राहुरलंकारं मनीषिणः॥'** इति॥

अथ चात्र प्रथम-चतुर्थ-पञ्चम-षष्ठानां, अन्त्योपान्त्ययो (नवमदशमयो) श्च गुरुत्वाच्छेषाणां च लघुत्वात्, पञ्चभिः पञ्चभिश्च विरामाच्चम्पकमालावृत्तम्। तल्लक्षणं **'तन्वि ! गुरु स्यादाद्यचतुर्थं पञ्चमषष्ठं चान्त्यमुपान्त्यम्। इन्द्रियबाणैर्यत्र विरामः, सा कथनीया चम्पकमाला॥'** इति॥१२॥

भाषा टीका –

हे देवी ! भूषणयुक्त, नेत्रप्रिय, तेरी मूर्ति को विद्वान् देखकर सेवन करने लग जाते हैं; क्या भँवरे पुष्प सहित चम्पकों की पंक्ति को पाकर उसमें लीन न हों ? अर्थात् होवें ही॥१२॥

दृष्टान्त अलंकार –

जहाँ क्रिया द्वारा अपने (स्वार्थ) अथवा अपने से भिन्न (तदर्थ) के सादृश्य या योग्यगुण के आधार पर सम्बन्ध बताया जाय वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है।

यहाँ भूषण भूषित देवी की मूर्ति और फूलों के समूह से युक्त चम्पकमाला का तथा भक्तों और भ्रमरों का सादृश्य सम्बन्ध कहा गया है, अतः यह दृष्टान्त अलंकार है।

चम्पकमाला छन्द –

यह दस वर्णों का छन्द है। इसमें प्रथम, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, दशम और नवम (उपान्त्य) अक्षर गुरु होते हैं। इसमें ५, ५ पर विराम होता है।

ऽ ।।ऽऽ ऽ ।।ऽऽ ।।ऽ ऽ ऽ।।ऽ

दीव्यतिरेकः स, द्युलताभां य उमां तां वर्णयति।

ऽ।।ऽऽ ऽ । ।ऽऽ। । ऽऽ ऽ।।ऽ

सद्गमनेयं, सा तु गतिकर्मणि बन्धं धारयति ॥१३॥

अन्वयः

रे ! सः कः दीव्यति ? यः तां उमां द्युलताभां वर्णयति। इयं सद्गमना, (किन्तु) सा तु गतिकर्मणि बन्धं धारयति।

शब्दार्थ –

दीप्यति – शोभायमान है, **द्युलताभां** – कल्पलता की कान्ति वाली (इच्छित फल देनेवाली), **सद्गमना** – उत्तम गतिवाली, **गतिकर्मणिबन्धं** – चलने की क्रिया से रहित

संस्कृत टीका –

॥दीव्यतीति॥ रे ! अरे ! स कः दीव्यति शोभते, यः तां तादृशाऽपूर्ववैभवाम्, उमां देवीं, द्युलताभां (इष्टदत्वेन) कल्पलतासदृशीं वर्णयति प्रकथयति। एतदनौचित्यमुत्तरार्द्धेन दर्शयति–इयं देवी सद्गमना विद्यमानगतिका, सा कल्पलता तु गतिकर्मणि चलनादिक्रियायां बन्धं रोधं (अभावं) धारयति धरति इति। एषा हि सद्गतितया चलात्मिका, सा तु जडप्रकृतिः ; तत्कथं तस्या देव्यास्तथा रूपा यास्तया कल्पलतया सहोपमोचितेत्यर्थः॥

अत्रेष्टफलदत्वेन संसिद्धसाम्ययोर्द्युलतादेवीरूपयोरुपमानोपमेय-योरेकतरस्मिन् उपमेये सद्गमनतयाऽऽधिक्यवर्णनाद् व्यतिरेकालंकारः।

तल्लक्षणं **'केनचिद्यत्रधर्मेण, द्वयो: संसिद्धसाम्ययो:॥ भवत्येकतराधिक्यं, व्यतिरेक: स उच्यते॥'** इति॥

अपि च पूर्वोक्तस्य चम्पकमालालक्षणस्यान्त्याक्षररहितत्वेनात्र संक्रमणान्मणिबन्धं वृत्तम्। तल्लक्षणं तु **'चम्पकमाला यत्र भवेदन्त्यविहीना प्रेमनिधे। छन्दसि दक्षा ये कवयस्तं, मणिबन्धं ते ब्रुवते॥'** इति॥१३॥

भाषा टीका –

अरे ! ऐसा वह कौन है ? जो कि देवी को कल्पलता की तरह वर्णन करता है। क्योंकि देवी तो चलन क्रिया सहित है, और वह कल्पलता तो जड है। अतएव देवी का कल्पलता के साथ सादृश्य कभी नहीं घटता॥१३॥

व्यतिरेक अलंकार –

दो धर्मियों में सादृश्य होने पर भी किसी धर्म या गुण से एक की अधिकता (व्यतिरेक) बताई जाय तो वह व्यतिरेक अलंकार है।

मणिबन्ध छन्द –

चम्पकमाला के अन्तिम अक्षर रहित मणिबन्ध छन्द होता है। चम्पकमाला के अन्तिम वर्ण के न रहने से बाकी में स्वत: समानता हो जाती है क्योंकि चम्पकमाला १० अक्षरों का छन्द है और मणिबन्ध ९ अक्षरों का ही छन्द है। अत: इसमें प्रथम, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ और नवम अक्षर गुरु होंगे।

ऽ ऽ ऽ ऽ । । ।। । ऽ
चैत्यं नाऽपह्नुति तव शिवे !

ऽ ऽ ऽ ऽ । । ।। । ऽ
मूर्त्तं हंसीशुचि[१] यश इदम्।

ऽ ऽ ऽ ऽ । ।। ।। ऽ
द्यां च व्यंक्तुं शिखरकलश–

ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । ऽ
व्याजाद्वाहंगुलिमुदसते॥१४॥

---

१. पुरुषापेक्ष्या स्त्रिय उज्ज्वलत्वाधिक्यं भवति, अत एव हंसीति स्त्रीत्वनिर्देश:।

अन्वयः

शिवे ! अपह्नुति इदं तव चैत्यं न (वर्त्तते), (किन्तु)(इदं) तव हंसी शुचि मूर्तं यशः (अस्ति) द्यां च व्यक्तुं शिखर कलश व्याजाद् बाह्वंगुलिं उदसते।

शब्दार्थ –

नापह्नुति – जो छिपी न हो अर्थात् प्रकट,
चैत्यं – मन्दिर, **हंसी** – मराली, **शुचि** – स्वच्छ, **मूर्तं** – मूर्तिमान, **इदं तव** – यह तुम्हारी (ये दोनों शब्द 'देहली दीपक' न्याय से दोनों पक्षों में शामिल हैं), **द्यां** – स्वर्ग को, **बाह्वंगुलिं** – हाथ की उँगली को, **उदसते** – उठा रहा है।

संस्कृत टीका –

॥चैत्यमिति॥ हे शिवे ! देवि ! दधिमथि ! अपगता ह्नुतिर्गोपनं यस्य तदपह्नुति प्रकटमिति भावः। तव ते, इदमेतत् चैत्यं मन्दिरं न, वर्त्तत इति शेषः। (किन्तु) इदं, हंसी मराली तद्वच्छुचि शुक्लं तव मूर्तं मूर्तिमत् यशः कीर्त्तिरस्तीति शेषः। अत्र 'इदं, तव' एतौ शब्दौ देहलीदीपकन्यायेनोभयान्वयिनौ। च पुनः, द्यां स्वर्गं, व्यक्तुं प्रकटयितुं, लोकेभ्य इति शेषः। शिखरस्य यः कलशः कनकमयमण्डकं तस्य व्याजान्मिषाद्, बाहोर्भुजस्यांऽगुलिं, उदसते उपादत्ते उन्नमयतीति भावः। 'उदसते' इति रूपं भौवादिकस्य 'असगतिदीप्त्यादानेषु' इत्यस्य लटि ते रूपम्। इत्यर्थः॥

अत्र 'इदं चैत्यं न, किन्तु मूर्त्तिमद् यशः' इत्यादिरीत्या चैत्यादपह्नवपूर्वकं यश आदिस्थापनं कृतमतोऽपह्नुतिरलंकारः। इयमेव व्याजादिशब्दोपलक्षिताऽपि भवतीत्युत्तरार्धे। तथापि प्रकटितम्। तल्लक्षणं तु **'नैतदेतदिदं ह्येतदित्यपह्नवपूर्वकम्। उच्यते यत्र सादृश्यादपह्नुतिरियं यथा॥'** इति॥

किञ्चेह वक्ष्यमाण–सप्तदशाक्षरात्मक–मंदाक्रान्तावृत्तलक्षणस्य

सप्तवर्णात्मकान्तिमयति–रहितत्वेन, पूर्वयोश्चतुः–षडक्षरात्मकयोर्यत्योर्दर्शनाद् हंसीवृत्तम्। तल्लक्षणं यथा **'मन्दाक्रान्ताऽन्त्ययतिरहिता, सालंकारे ! यदि भवति या। सा विद्वद्भिर्ध्रुवमभिहिता, ज्ञेया हंसी कमलवदने॥'** इति ! ॥१४॥

भाषा टीका –

हे देवी दधिमथी ! यह आपका मन्दिर नहीं है, किन्तु, यह आपका मूर्तिमत् यश है। और वह यश, शिखर के कलश के मिष से, स्वर्ग को लोकों के लिए बताने को भुज की अंगुली को ऊँची कर रहा है। अर्थात् 'इस देवी के भक्तों के लिए वह स्वर्ग तैयार है' ऐसे बता रहा है॥१४॥

अपह्नुति अलंकार –

जहाँ यह कहते हुए कि 'निश्चय ही यह ऐसा नहीं है बल्कि ऐसा है' वास्तविकता को झुठलाते हुए सादृश्य का निषेध किया जाय, वहाँ अपह्नुति अलंकार होता है।

यहाँ यह कहकर कि यह मन्दिर नहीं तुम्हारा मूर्तिमान यश है, मंदिर का निषेध कर यश को स्थापित किया गया है, अतः अपह्नुति अलंकार है।

हंसी छन्द –

मन्दाक्रान्ता के अन्तिम विराम (७ वें) से रहित हंसी छन्द होता है। मन्दाक्रान्ता में ४,६,७ पर विराम होता है जब कि हंसी में ४, ६ पर ही विराम होता है। हंसी १० वर्णों का छन्द होता है और मन्दाक्रान्ता १७ वर्णों का होता है। मन्दाक्रान्ता की ही भाँति हंसी में भी प्रथम चार वर्ण और दसवाँ गुरु होते हैं। मन्दाक्रान्ता का लक्षण और उदाहरण श्लोक संख्या ३८ में देखें।

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ
पूज्ये ! दुर्गे ! ऽतुल्ययोगित्वभाज-

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ
स्त्वद्भक्तस्याऽपूर्वशोभा प्रवृत्तिः।

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ
नैश्चल्य श्रीशालिनी गूढतत्त्व-

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ
मीष्टे लब्धुं, सा तथा दिव्यदृष्टिः॥१५॥

अन्वयः

पूज्ये ! दुर्गे ! अतुल्ययोगित्वभाजः त्वद् भक्तस्य अपूर्व शोभा तथा दिव्यदृष्टिः नैश्चल्य श्रीशालिनी प्रवृत्तिः गूढ़तत्त्वं लब्धुं ईष्टे।

शब्दार्थ –

अतुल्य – बेजोड़, **योगित्वभाजः** – योग के पात्र का,
नैश्चल्यश्रीशालिनी – स्थायी शोभा से युक्त, **ईष्टे** – सकती है,
दिव्य दृष्टिः – अलौकिक दृष्टि जो पलक न गिरने के कारण स्थिर रहती है।

संस्कृत टीका –

॥ पूज्ये इति॥ हे पूज्ये ! पूजनीये ! दुर्गे ! देवि ! योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः, सोऽस्यास्तीति योगी, तद्भावस्तत्त्वम्, अतुल्यम् असदृशं यद्योगित्वं योगवत्त्वं तद्भजति तथोक्तस्य। "भजो ण्विः" इति ण्विः। परिपूर्णयोगासक्तस्येति भावः। त्वद्भक्तस्य त्वदीय–सेवकस्य, अपूर्वा लोकोत्तरा शोभा यस्यास्थताभूता, (तथा) निश्चलस्य भावो नैश्चल्यं स्थैर्यमिति भावः। तस्य श्रीः शोभा, तया शालिनी शोभिनी। निश्चलेति भावः। प्रवृत्तिः कार्यव्यापृतिः कर्मसाधनचेष्टेति भावः। गूढं गुप्तं यत्तत्त्वं तत, लब्धुं प्राप्तुम्, ईष्टे शक्नोति, तथा पुनः सा प्रसिद्धा दिव्यदृष्टिः, दिवा भवा दिव्या या दृष्टिर्दर्शनम्। दिव्यदृष्टिरपि अपूर्वशोभा, अनिमेषतया निश्चला च भवति। साऽपि गुप्तं तत्त्वं यत्किमपि, अधिगन्तुं शक्नोत्येव।

अत्र योगद्वारा देव्या दुर्ज्ञेयताप्रदर्शनेन 'दुर्गे' इति साकूतमित्यर्थः॥

अत्र योगप्रवृत्तिरूपमुपमेयं समीकर्त्तुं तत्त्वप्राप्तिशक्तिरूपया तुल्यया, एक (वर्त्तमान) कालिक्या च क्रियया दिव्यदृष्टिरूपेणोपमानेन योज्यतेऽतस्तुल्ययोगितालंकारः। तल्लक्षणं तु **'उपमेयं समीकर्त्तुमुपमानेन तु योज्यते। तुल्यैककालक्रियया यत्र सा तुल्ययोगिता॥'** इति॥

अपि चात्र षष्ठ-नवमयोरक्षरयोर्लघुतयाऽन्येषां च गुरुतया, चतुर्भिः सप्तभिश्च वर्णैर्विश्रामसम्भवाच्छालिनीवृत्तम्। तल्लक्षणं **'ह्रस्वो वर्णो जायते यत्र षष्ठः, कम्बुग्रीवे ! तद्वदेवाष्टमाऽन्त्यः। विश्रामः स्यात्तन्वि ! वेदैस्तुरंगैस्तां भाषन्ते शालिनीं छान्दसीयाः॥'** इति॥१५॥

भाषा टीका –

हे पूज्या देवी ! पूर्णयोग को धारण करनेवाले आपके भक्त की अपूर्व शोभावाली निश्चल चेष्टा, और दिव्यदृष्टि गुप्ततत्त्व को पा सकती है। अर्थात् गुप्ततत्त्व या तो आपका योगी भक्त पा सकता है; या दिव्य दृष्टि॥१५॥

तुल्ययोगिता अलंकार –

जहाँ उपमान और उपमेय में समान और एक काल में होने वाली क्रिया की तुल्यता दिखाई जाये, वहाँ तुल्ययोगिता अलंकार होता है।

यहाँ योग प्रवृत्ति उपमेय है और दिव्य दृष्टि उपमान है दोनों के द्वारा गूढ़तत्व पाना समान है और दोनों में एक ही वर्तमान काल में होने वाली क्रिया है।

शालिनी छन्द –

जिसमें छठा और अष्टमान्त्य अर्थात् नवाँ वर्ण ह्रस्व हो और चार तथा ७ पर विराम हो वह शालिनी छन्द होता है। यह ११ अक्षरों का होता है।

ऽ। ।ऽ।। ऽ। ।ऽ ऽ
त्वन्मुखवैरकृदिन्दुमृगं नु–
ऽ।।ऽ।।ऽ। । ऽऽ
त्प्रेक्षणमक्षमयेव निहन्तुम्।
ऽ । । ऽ। । ऽ। ।ऽ ऽ
उच्छलितं तव वाहहरिं हेऽ–
ऽ।। ऽ। । ऽ। ।ऽऽ
दोऽधक आनतिवर्त्म नयेऽम्ब ! ॥१६॥

अन्वयः

हे अम्ब ! नु त्वत् मुखवैरकृत् इन्दुमृगं अक्षमया निहन्तुं इव उत्प्रेक्षणं उच्छलितं तव वाह हरिं अदः अधकः आनतिवर्त्म नये।

शब्दार्थ –

इन्दुमृगं – चन्द्रमा में स्थित हरिण को, **अक्षमया** – क्रोध से, **वाहहरिं** – वाहन सिंह को, **आनतिवर्त्म** – नमन मार्ग, **नये** – ले जाता हूँ।

संस्कृत टीका –

॥त्वदिति॥ हे अम्ब ! मातः! दधिमथि, नु वितर्के। तव मुखेन वैरं विरोधं करोति तथाभूतो य इन्दुश्चन्द्रस्तस्य मृगम् अङ्कहरिणम्, अक्षमया क्रोधेन, निहन्तुं मारयितुमिव, उदूदूर्ध्वं प्रेक्षणं यत्र कर्मणि तत्तथा, उच्छलितं उत्कूर्दनं प्राप्तं, तव ते, वाहहरिं वाहनभूतं सिंहं, अदः इदं (आनतिवर्त्मविशेषणमिदम्) अधकः नीचैः, "अव्ययसर्वनाम्नाम्" इत्यादिनाऽकच्। आनतिवर्त्म नमनपदवीं, नये आरोपयामि। नमामीति भावः। इत्यर्थः॥

अत्र सिंहोच्छलितरूपस्य सतः स्वाभाविकस्यार्थस्याऽन्यथा चन्द्रहरिणहननफलकतया योग्यकल्पनायाः सत्त्वादुत्प्रेक्षाऽलंकारः। स चेवशब्देनाऽत्र दर्शिताः। तल्लक्षणं तु 'कल्पना काचिदौचित्याद्यत्रार्थस्य'[१]

---

१. अर्थ शब्देनोपलक्षणात् क्रियाऽपि ग्राह्या तेन क्रियोत्प्रेक्षाऽपि ज्ञेया। इदमेव द्योतियंतु मूले तथैवोत्प्रेक्षितम्।

सतोऽन्यथा। द्योतिते वादिभिः शब्दैरुत्प्रेक्षा सा स्मृता यथा॥' इति॥

किञ्चात्र प्रथम-चतुर्थ-सप्तम-दशमैकादशानामक्षराणां गुरुत्वेनाऽन्येषां च लघुत्वेन विरचनाद्दोधकवृत्तम्। तल्लक्षणं तु **'आद्यचतुर्थमहीननितम्बे !, सप्तमकं दशमं च तथाऽन्त्यम्। यत्र गुरु प्रकटस्मरसारे, तत्कथितं ननु दोधकवृत्तम्॥'** इति॥१६॥

भाषा टीका –

हे देवि ! आप के मुख के साथ वैर करनेवाले चन्द्रमा के हरिण को मारने को ही मानों उछलते हुए, ऊँची दृष्टिवाले आप के वाहन सिंह को यह मैं नीचा होकर प्रणाम करता हूँ॥१६॥

उत्प्रेक्षा अलंकार –

जहाँ विद्यमान अर्थ के औचित्य से भिन्न 'इव' आदि शब्दों के द्वारा किसी अन्य प्रकार की कल्पना की जाय। वह उत्प्रेक्षा अलंकार होता है।

सिंह का उछलना उसका स्वभाव है किन्तु 'इव' शब्द के द्वारा यह दिखाया जा रहा है कि जैसे वह चन्द्रमा में स्थित हरिण को मारने जा रहा है, अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है। अर्थ शब्द क्रिया के लिए भी लागू है, अतः यहाँ उत्क्षेपण (उछलना) क्रिया का भी ग्रहण किया गया है।

दोधक छन्द – यह ११ अक्षरों का होता है। इसमें प्रथम, चतुर्थ, सप्तम, दशम तथा अन्तिम अर्थात् ११वाँ अक्षर गुरु होते हैं।

ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

अर्थान्तरन्याऽसमयुक्तिभाज-

ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

स्त्वत्पाठतः सद्वच इन्द्रवज्राः।

ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

दुर्गे ! बुधा वादिगिरीञ्जयन्ति

ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

दुर्गाश्रितानां विजयो ह्यधीनः॥१७॥

अन्वयः

दुर्गे ! त्वत्पाठतः अर्थान्तरन्यासमयुक्तिभाजः सत् वचः इन्द्रवज्राः बुधाः वादिगिरीन् जयन्ति। हि दुर्गाश्रितानां विजयः अधीनः (अस्ति)।

शब्दार्थ –

अर्थान्तरन्या – अर्थ के भीतर अन्य, **समयुक्तिभाजः** – समानयुक्ति निकालनेवाले, **सद्वचइन्द्रवज्राः** – इन्द्रके वज्र की भाँति विद्वानों के वचन, **वादिगिरीन्** – शास्त्रार्थ में पहाड़ की तरह अडिग रहनेवाले, **दुर्गाश्रितानां** – (१) दुर्गा देवी का आश्रय लेने वालों का (२) किले का आश्रय लेने वालों का।

संस्कृत टीका –

।।अर्थेति।। हे दुर्गे ! देवि ! त्वत्पाठतस्तव पाठाद्, दुर्गासप्तशतीपाठादिति भावः। अर्थानामभिधेयानामन्तर्मध्येऽन्याऽपरासमाऽसदृशी या युक्तिस्तां[१] भजन्ते तथाभूताः। अर्थगतान्यसुयुक्तिविद इति भावः। अर्थेषु मध्येऽन्यामपि युक्तिं ये विदन्ति त इति तात्पर्यम्। सतो विदुष आचार्यस्येति भावः। वचो वचनमेवेन्द्रस्य वज्रं येषां तथोक्ताः, बुधा विद्वांसः वादिगिरीन् शास्त्रार्थ-प्रतिपक्षिरूपपर्वतान्, जयन्त्यभिभवन्ति। अत्राऽर्थान्तरेण पूर्वोक्तं द्रढयति–हि यतः, दुर्गाश्रितानां देवीप्रपन्नानां दुर्गमाश्रितानां च पुरुषाणां विजयोऽधीनो वश्यः। अस्तीति भावः। यो दुर्गां दुर्गं चाश्रयति स जयत्येवेति भावः। इत्यर्थः।।

अत्र दुर्गापाठहेतुकस्य वादिविजयरूपस्यार्थस्य सिध्यर्थं चतुर्थपदोक्तस्यान्यार्थस्य न्यासेनाऽर्थान्तरन्यासालंकारः। स चात्र दुर्गाश्रितशब्दस्य द्व्यर्थतया श्लिष्टो ज्ञेयः। तल्लक्षणं तु **'उक्तसिद्ध्यर्थमन्यार्थ-न्यासो व्याप्तिपुरःसरः। कथ्यतेऽर्थान्तरन्यासः, श्लिष्टोऽश्लिष्टश्च स द्विधा।।'** इति।।

अपि च तृतीय-षष्ठ-नवमाक्षराणां ह्रस्वतयाऽन्येषां च गुरुतया

१. सा च युक्तिः ''उत्थाय च महासिंहम्'' इत्यादिवदर्थान्तराश्रयणेन ज्ञेया, विस्तरभयान्न टीकिता।

रचनेनेन्द्रवज्रावृत्तम्। तल्लक्षणं तु **'यस्यां त्रिषट्सप्तममक्षरं चेद्ह्रस्वं सुजंघे नवमं च तद्वत्। गत्या विलज्जीकृतहंसकान्ते !, तामिन्द्रवज्रां ब्रुवते कवीन्द्राः॥'** इति॥१७॥

भाषा टीका –

हे देवी ! आप के पाठ से अर्थात् सप्तशती पाठ से, अर्थों के बीच में अन्य - अपूर्व युक्ति को जाननेवाले, पूर्वाचार्यरूप इन्द्र के वचन रूपवज्रवाले विद्वान् लोकवादि (शास्त्रार्थ में अडिग) रूप पर्वतों को जीत लेते हैं। हाँ ठीक है, दुर्गा देवी और दुर्ग किले को आश्रय करनेवाले के विजय (जीत) अधीन होती ही है। अर्थात् जैसे राजाओं का किला मजबूत रहता है, और समय पर उसका आश्रय कर जय पाते हैं, वैसे ही दुर्गा के आश्रय से जय मिलता है॥१७॥

अर्थान्तरन्यास अलंकार –

जहाँ कहे हुए अर्थ की सिद्धि के लिए प्रमाण पूर्वक अन्य अर्थ को रखा जाता है वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। यह दो प्रकार का होता है – (१) श्लेष सहित (२) श्लेष रहित।

'विजय दुर्गापाठ करनेवाले भक्तों के अधीन है' इस अर्थ की सिद्धि के लिए दुर्गाश्रित का श्लेष द्वारा दो अर्थ करके प्रमाण पूर्वक बताया गया है कि दुर्गा का आश्रय लेने वाले किले का आश्रय लेने वालों की तरह विजय प्राप्त करते हैं। यह श्लेष सहित अर्थान्तरन्यास है।

इन्द्रवज्रा छन्द –

इन्द्रवज्रा ११ अक्षरों का होता है। इसमें तीसरा, छठा, सातवाँ और नवाँ अक्षर लघु होता है।

I S I S S I I S I S S
मनः ! समासोक्तिरिति ब्रुवे त्वा–
I S I S S I I S I S S
मितस्ततो मा भ्रम आश्रयाऽम्बाम्।
I S I S S I I S I S S
श्रयन्ति यां नाभिज–कृत्तिवास–
I S I S S I I S I S S
उपेन्द्र–वज्रायुधमुख्यदेवाः ॥१८॥

अन्वयः

मनः ! समासोक्ति (अहं) इति त्वां ब्रुवे – (त्वम्) इतस्ततः मा भ्रम, अम्बां आश्रय, यां नाभिज, कृत्तिवास, उपेन्द्र, वज्रायुध मुख्य देवाः श्रयन्ति।

शब्दार्थ –

समास – संक्षेप, थोड़े में, **उक्ति** – कथन, **नाभिज** – ब्रह्मा, **कृत्तिवास** – शिव, **उपेन्द्र** – विष्णु, **वज्रायुध** – इन्द्र, **श्रयन्ति** – आश्रय लेते हैं।

संस्कृत टीका –

॥मन इति॥ हे मनः ! हृदय ! समासेन संक्षेपेण उक्तिर्वचनं यस्य तादृशोऽहमिति शेषः। इति वक्ष्यमाणप्रकारेण त्वां, ब्रुवे कथयामि। त्वमितस्ततः मा भ्रमः, भ्रमणं मा कुरु। भ्रमेर्दैवादिकस्य लुङि रूपम्। पुषादित्वादङ्। "न माङ्योगे" इत्यडभावः। अम्बां देवीं, अम्बाशब्देन जगदुत्पादिका शक्तिः सूचिता। आश्रय सेवस्व। यां (देवीं) नाभिजो ब्रह्मा, कृत्तिवासाः शिवः, उपेन्द्रो विष्णुः, वज्रायुध इन्द्र इत्येते मुख्या आदयो येषां ते तथोक्ता ये देवाः श्रयन्ति सेवन्ते। इत्यर्थः॥

अत्र 'हे मनुष्य ! यां महात्मानः श्रयन्ति, तां साधुपदवीं त्वमपि श्रय, इतस्ततः कुमार्गेषु मा भ्रम।' इति वक्तुमिष्टस्यार्थस्य प्रतीतये मनः प्रति ब्रह्मादिश्रितदेवीसमाश्रयणोपदेशरूपं सधर्ममन्यद्वस्तूक्तमतः

समासोक्तिरलंकारः। तल्लक्षणं **'उच्यते वक्तुमिष्टस्य, प्रतीतिजनने क्षमम्। सधर्मं यत्र वस्त्वन्यत्समासोक्तिरियं यथा॥'** इति॥

किञ्चात्र पादेष्वाद्यानां वर्णानां लघुत्वेन तदन्येषां चेन्द्रवज्रानुसारं प्रयुक्तत्वादुपेन्द्रवज्रावृत्तम्। तल्लक्षणं तु **'यदीन्द्रवज्राचरणेषु पूर्वे, भवन्ति वर्णा लघवः सुवर्णे !। अमन्दमाद्यन्मदने ! तदानीमुपेन्द्रवज्रा कथिता कवीन्द्रैः॥'** इति ॥१८॥

भाषा टीका –

हे मन ! मैं तुझे संक्षेप से कथन करता हूँ। तू इधर उधर मत फिर। उस जगदम्बा का शरण ले। जिस (देवी) का ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इन्द्र आदि देवता सेवन करते हैं॥१८॥

समासोक्ति अलंकार – वक्ता के कथन में विश्वास उत्पन्न कराने में समर्थ किसी अन्य सदृश वस्तु का कथन समासोक्ति अलंकार है।

यहाँ वक्ता का कथन है कि मन ! जिस देवी का आश्रय महात्मा ग्रहण करते हैं, कुमार्ग में न भटक कर उस उत्तम मार्ग का अनुसरण तुम भी करो। इस कथन में विश्वास उत्पन्न कराने के लिए ब्रह्मादि देवताओं के भी आश्रय लेने वाली समान धर्मी बात का कथन किया गया है, अतः यह समासोक्ति अलंकार है।

उपेन्द्रवज्रा छन्द –

इन्द्रवज्रा के समान उपेन्द्रवज्रा भी ११ वर्णों का छन्द है। यदि इन्द्रवज्रा के चारों चरणों में पहला वर्ण लघु हो जाय तो उसे उपेन्द्रवज्रा कहते हैं। शेष इन्द्रवज्रा की भाँति समझना चाहिए।

ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ
याऽशिक्षिताऽप्युल्लसति प्रवीणा
। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ
विभावनाऽपीशरता भवादा।
ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ
लोलेक्षणा हीनभयाऽप्युमा सा
। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ
क्रियात्सुबुद्ध्या उपजातिमन्तः ।।१९।।

अन्वयः

या (देवी) अशिक्षिता अपि प्रवीणा, आ भवाद् विभावना अपि ईशरता, हीनभया अपि लोलेक्षणा उल्लसति, सा उमा (मम) अन्तः सुबुध्या उपजातिं क्रियात्।

शब्दार्थ –

अशिक्षितापि – बिना शिक्षा पाये भी, **प्रवीणा** – निपुण, **विभावनाऽपि** – विगतवासना होते हुए भी, **भवादा** – (आ भवात्) जन्म से, **हीनभयात्** – भय रहित होन पर भी, **लोलेक्षणा** – चंचल नयनों वाली, **अन्तः** – मन में, **सुबुध्या** – उत्तम बुद्धि की, **उपजार्ति कुर्यात्** – उत्पन्न करे।

संस्कृत टीका –

।।वेति।। या (देवी), अशिक्षिता शिक्षामनीताऽपि प्रवीणा चतुरा, तथा भवात् आ जन्मन आरभ्य, विभावनाऽपि विगतवासनाऽपि, ईशरता ईश्वरनिरता; तथा हीनभया त्रासरहिताऽपि, लोलेक्षणा चलनयना, उल्लसति शोभते। सा उमा देवी, अन्तर्मनसि ममेति शेषः। सुबुद्ध्याः सुमतेः, उपजातिम् उत्पत्तिं क्रियात्करोतु। इत्यर्थः।।

अत्र शिक्षारूपकारेण विना चातुर्यरूपकार्यस्य, भावनारूपकारणेन च विना जन्मत ईश्वरासक्तिरूपकार्यस्य, तथा भयरूप कारणं विना नेत्रचलत्वकार्यस्य दर्शनाद्, देवीस्वाभाविकगुणोत्कर्षप्रकटनाच्च

विभावनाऽलङ्कार:। तल्लक्षणं तु **'विना कारणसद्भावं यत्र कार्यस्य दर्शनम्। नैसर्गिकगुणोत्कर्षभावनात्सा विभावना।।'** इति।।

अपि चात्र प्रथमतृतीययो: पादयोर्दीर्घादिवर्णतया इन्द्रवज्राया दर्शनात्, तथा द्वितीयचतुर्थयो: पादयोर्ह्रस्वादिमवर्णत्वेन उपेन्द्रवज्राया दर्शनादुपजातिवृत्तम्। तल्लक्षणं **'यत्र द्वयोरप्यनयोस्तु पादा, भवंति सीमंतिनि ! चन्द्रकान्ते !। विद्वद्भिराद्यै: परिकीर्तिता सा, प्रयुज्यतामित्युपजातिरेषा।।'** इति।।१९।।

भाषा टीका –

जो (देवी) विना शिक्षा पाये चतुरा है, और जो वासना बिना ही जन्म से महेश्वर में रति पाई हुई है और डर विना ही चलनेत्रवाली शोभित हो रही है। वह देवी मन में अच्छी बुद्धि उत्पन्न करे।।१९।।

विभावना अलंकार –

जहाँ कारण न होते हुए भी स्वाभाविक गुण की अधिकता के ज्ञान से कार्य का बोध या दर्शन हो उसे विभावना अलंकार कहते है।

प्रस्तुत श्लोक में शिक्षा रूप कारण के विना ही चातुर्य रूप कार्य की, भावना रूप कारण के विना ही जन्म से ही शिव के प्रति आसक्ति रूपी कार्य और भय रूप कारण के विना ही आँखों के चंचल होने का कार्य दिखाई देता है जिसका बोध देवी के स्वाभाविक गुण के उत्कर्ष के ज्ञान से होता है। अत: यहाँ विभावना अलंकार है।

उपजाति छन्द –

यह भी ११ वर्णों का छन्द है। जिसमें इन दोनों (इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा) के चरण हों अर्थात् पहले और तीसरे चरण में इन्द्रवज्रा और दूसरे तथा चौथे चरण में उपेन्द्रवज्रा हो, उसे विद्वान उपजाति छन्द कहते हैं। अर्थात् दूसरे तथा चौथे चरण का आद्यक्षर लघु हो जाता है शेष इन्द्रवज्रा की भाँति होता है।

ऽऽ।ऽ ऽ।।ऽ।ऽऽ
हृद्दीपकं तेऽविपरीतपूर्वं[१]
।ऽ। ऽऽ।।ऽ। ऽऽ
महौज आख्यानकमम्ब[१]! रूपम्।
।ऽ।ऽऽ। ।ऽ।ऽऽ
सुरा द्युलोकेऽथ नरा नृलोके
।ऽ। ऽऽ।।ऽ। ऽऽ
स्मरन्ति पातालतले च नागाः॥२०॥

अन्वयः

अम्ब ! ते हृद् दीपकं अविपरीतपूर्वं, महौजः आख्यानकम् रूपं सुराः द्युलोके स्मरन्ति, नराः नृलोके (स्मरन्ति), नागाः च पातालतले (स्मरन्ति)।

शब्दार्थ –

हृद्दीपकं – मन को प्रकाशित करने वाले, **अविपरीतपूर्वं** – सानुकूल, **आख्यानक** – कथाओं में वर्णित

संस्कृत टीका –

॥हृदिति॥ हे अम्ब ! मातः ! ते तव, हृद्दीपकं मनःप्रदीपकं, हृदयस्य प्रकाशकमिति भावः। अविपरीतपूर्वम् अविपरीतमविरुद्धम् अनुकूलमिति भावः। तथाभूतं च तत्पूर्वं पुरातनं च तदिति कर्मधारयः। महौजः, प्रकृष्टतेजःशालि, आख्यानकं, आख्यानकं कथा, तस्येदं आख्यानकं कथासु वर्ण्यमानमिति भावः। रूप सौन्दर्यं आकारं वा (कर्म); सुरा देवाः द्युलोके स्वर्गलोके, स्मरन्ति; अथ पुनः, नरा मनुष्या नृलोके मनुष्यलोके स्मरन्ति; नागाः काद्रवेयाश्च पातालतले नागलोके

१. विपरीतपूर्वम् आख्यानकं ''विपरीताख्यानकम्'' इतिवृत्तसूचनाय इत्थं न्यस्तम् तेन मतान्तराभिप्रायोऽपि सूचितः। आख्यानकीस्थान आख्यानकसंकेतस्तु वसन्ततिलका (क) वज्ज्ञेयः। प्रथमपादारम्भे 'आख्यानकी' इति संकेतने वृत्तस्य पूर्वसंकेतनेन पूर्वक्रमभंगो भवेत् तदन्यत्रिपादारम्भे च तथा प्रयोगेण पूर्वस्य गुरुत्वाच्छन्दोनियमभंगः स्यादत इत्थं प्रयुक्तम्॥

स्मरन्ति लोकत्रयस्मरणीया त्वमिति भाव:। इत्यर्थ:॥

अत्र अन्तिमपादवर्त्तिना 'स्मरन्ति' इति क्रियापदेनैकेनैव पूर्वोक्तसर्ववाक्यार्थसंगतिर्जायतेऽतो दीपकालंकार:। तल्लक्षणं **'आदिमध्यान्तवर्त्येकपदार्थेनार्थसंगति:। वाक्यस्य यत्र जायेत तदुक्तं दीपकं यथा॥'** इति॥

अत्र प्रथमपादस्य इन्द्रवज्रानुसारेण, त्रयाणां च पादानामुपेन्द्रवज्रालक्षणानुसारेण विरचनाद्विपरीताख्यानकीवृत्तम्। तल्लक्षणं तु **'आख्यानकी स्यात्प्रकटीकृतार्थे !, यदीन्द्रवज्राचरण: पुरस्तात्। उपेन्द्रवज्राचरणास्त्रयोऽन्ये, मनीषिणोक्ता विपरीतपूर्वा॥'** इति॥२०॥

भाषा टीका –

हे देवी ! हृदय को प्रकाशित करनेवाले, तेजस्वी कथाओं में वर्णन किये गये ऐसे आप के रूप का, देवता स्वर्ग में, और मनुष्य मनुष्यलोक में, और नाग पाताल में स्मरण करते हैं॥२०॥

दीपक अलंकार –

जिसमें वाक्य के आदि अन्त अथवा मध्यवर्त्ती एक वस्तु या क्रिया के साथ अर्थ का सम्बन्ध हो, वहाँ दीपक अलंकार होता है।

यहाँ अन्तिम पद में 'स्मरन्ति' इस क्रिया पद की पहले के वाक्य के साथ अर्थ की संगति होती है।

आख्यानकी छन्द –

आख्यानकी में पहला चरण इन्द्रवज्रा का और शेष तीन चरण उपेन्द्रवज्रा के होते हैं। इसे **विपरीतपूर्वा** भी कहते हैं। उपेन्द्रवज्रा और इन्द्रवज्रा की ही भाँति इसमें भी ११ अक्षर होते हैं। इन्द्रवज्रा में ३,६,७ और ९वें अक्षर लघु होते हैं और उपेन्द्रवज्रा के चारो चरणों का प्रथम अक्षर लघु होता है।

ऽ। ऽ।।।ऽ।ऽ।ऽ
त्वन्महेऽतिशयसंगतोत्सुक–
ऽ।ऽ।।।ऽ।ऽ।ऽ
नृध्वनिर्गुरुरथोद्धतात्मकः।
ऽ।ऽ।।।ऽ ।ऽ।ऽ
निद्रितान्दधिमथि ! स्तुतिप्रथो
ऽ। ऽ।।।ऽ।ऽ। ऽ
मंक्षु जागरयति त्रिविश्वगान्॥२१॥

अन्वयः

दधिमथि ! त्वत् महे स्तुतिप्रथः गुरुः अथ उद्धतात्मकः अतिशय संगतोत्सुकः नृध्वनिः त्रिविश्वगान् निद्रितान् मंक्षु जागरयति।

शब्दार्थ –

महे – उत्सव में, **स्तुतिप्रथः** – स्तुति प्रकट करने वाला, **उद्धतात्मकः** – जोर से, **अतिशयसंगतोत्सुकः** – बहुत से लोगों का सम्मिलित (स्वर), **मंक्षु** – शीघ्र।

संस्कृत टीका –

॥त्वदिति॥ हे दधिमथि ! देवि ! त्वन्महे तव नवरात्रोत्सवे; "मह उद्भव उत्सवः" इत्यमरः। स्तुतिप्रथः स्तुतिप्रकाशकः, गुरुर्विस्तीर्णः, अथ पुनः, उद्धतात्मक उन्नतात्मा, उच्चैर्गत इति भावः। अतिशयेनातीव संगताः संमिलिता ये उत्सुका उत्कण्ठिता नरो मनुष्यास्तेषां ध्वनिः शब्दः; निद्रितान् संजातनिद्रान् 'तारकादित्वादितच्' त्रिविश्वगाज्जगत्रयवर्तिनः। लोकानिति शेषः। मंक्षु शीघ्रं, जागरयति विनिद्रीकरोति उद्धतश्च कोऽपि कमपि सुप्तं जागरयत्येव। अनेनोत्सव-लोक-ध्वानातिशयः सूचित इत्यर्थः॥

अत्र महोत्सवागतमनुष्यध्वनिरूपस्य वस्तुन उत्कर्षं वक्तुं तत्कृतत्रिलोकी जागरणमसंभाव्यमुक्तम्, अतोऽतिशयालंकारः। तल्लक्षणं तु **'वस्तुनो वक्तुमुत्कर्षमसंभाव्यं यदुच्यते। वदन्त्यतिशयाख्यं तमलंकारं बुधा यथा॥'** इति॥

किञ्च प्रथमतृतीय-सप्तम-नवमैकादशानामक्षराणां दीर्घत्वात्, तदन्येषां च ह्रस्वतया रथोद्धतावृत्तम्। तल्लक्षणं तु **'आद्यमक्षरमन्तस्तृतीयकं, सप्तमं च नवमं दशान्तिमम्। दीर्घमिन्दुमुखि ! यत्र जायते, तां वदन्ति कवयो रथोद्धताम्॥'** इति॥२१॥

भाषा टीका –

हे दधिमथी ! आपके उत्सव में अनेक इकट्ठे हुएं लोगों का स्तुति को सूचन करनेवाला कोलाहल सोये हुए तीनों जगत् के लोगों को जल्दी जगा देता है॥२१॥

अतिशय अलंकार –

वस्तु का उत्कर्ष बताने के लिए जहाँ असम्भव बात कही जाय, उसे **अतिशय** अलंकार कहते हैं।

यहाँ महोत्सव में उठी मनुष्यों की ध्वनि रूप वस्तु का उत्कर्ष बताने के लिए उससे तीनों लोकों के जाग जाने की असम्भव बात कही गई है।

रथोद्धता छन्द –

जिसमें प्रथम, तृतीय, सप्तम, नवम और अन्तिम (११वाँ) अक्षर गुरु हों, वह रथोद्धता छन्द है।

ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ ऽ
हृद्गृहे तुलतमः प्रसरे मे

ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ ऽ
स्वागताऽत्र सुमनोमणिरम्बा।

ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ ऽ
तेजसां निधिरपास्य तमांसि

ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ ऽ
सा प्रकाशमनिशं वितनोतु॥२२॥

अन्वयः

तेजसां निधिः, सुमनः मणिः सा अम्बा अतुलतमः प्रसरे अत्र मे हृद् गृहे स्वागता (सती) तमांसि अपास्य अनिशं प्रकाशं वितनोतु।

शब्दार्थ –

सुमनोमणिः – देवियों में रत्न, **अतुलतमः प्रसरे** – अपार अज्ञान से भरे हुए, **स्वागता** – भली भाँति आकर, **अपास्य** – हटाकर, **अनिशं** – सर्वदा।

संस्कृत टीका –

॥हृदिति॥ तेजसां महसां निधिः राशिः, सुमनोमणिर्देवीरत्नं, इह देववाचकस्य सुमनश्शब्दस्य स्त्रीत्वेऽपि न विशेषः॥ 'विबुधीमणिः' इति पाठान्तरेऽपि स एवार्थः। सा अम्बा देवी; अतुलोऽसदृशः तमः–प्रसरः अविवेकरूपान्धकारनिकरो यत्र तथोक्ते, मे मम हृद्गृहे मनोमन्दिरे; स्वागता सुष्ठु आगता सती, तमांसि पूर्वोक्तरूपानन्धकारान् अपास्य अपहृत्य, अनिशं निरन्तरं प्रकाशं ज्ञानरूपं, वितनोतु विस्तारयतु। अज्ञानमपहृत्य ज्ञानं ददात्वित्यर्थः॥

अत्राऽन्धकारनाशरूपमर्थम् उत्पादयतो देवीरूपस्य कर्तुः तेजोनिधित्व–सुमनोमणित्वं–विशेषणेन तस्यान्धकारस्य नाशनयोग्यता युक्त्या दर्शिताऽतो हेतुरलंकारः। तल्लक्षणं तु **'यत्रोत्पादयतः किंचिदर्थं कर्तुः प्रकाश्यते। तद्योग्यतायुक्तिरसौ, हेतुरुक्तो बुधैर्यथा॥'** इति॥

अपि चात्र नवमदशमाक्षरयोः (ह्रस्वदीर्घत्वरूप) व्यत्ययदर्शनात्, तदन्येषां च वर्णानां पूर्वोक्तरथोद्धतालक्षणानुसारित्वात् स्वागतावृत्तम्। तल्लक्षणं **'अक्षरं च नवमं दशमं चेद् व्यत्ययाद्भवति यत्र विनीते। प्राक्तनैः सुनयने ! यदि सैव, स्वागतेति कविभिः कथिताऽसौ॥'** इति ॥२२॥

भाषा टीका –

तेज के निधानरूप देवियों में रत्न समान वह माता, अपार अज्ञानरूप अन्धकार से भरे हुए मेरे हृदयरूप गृह में आकर अन्धकार को दूर करके (ज्ञानरूप) प्रकाश को निरन्तर फैलावे॥२२॥

हेतु अलंकार –

जहाँ कर्त्ता के किसी अर्थ का प्रतिपादन करने के लिए उसकी योग्यता को युक्ति द्वारा प्रदर्शित किया जाय, उसे हेतु अलंकार कहा जाता है।

यहाँ देवी रूप कर्त्ता के अन्धकार नाश रूप अर्थ का प्रतिपादन करने के लिए 'तेज का निधान होना और देवियों में मणि होना' इन विशेषणों से अन्धकार नाश करने की योग्यता को युक्ति द्वारा प्रदर्शित किया गया है, अतः यह हेतु अलंकार है।

स्वागता छन्द –

रथोद्धता की भाँति स्वागता छन्द भी ११ अक्षरों का होता है। रथोद्धता के नवम और दशम वर्ण विपरीत हो जायें तो उसे स्वागता छन्द कहते हैं। अर्थात् रथोद्धता का नवम गुरु वर्ण स्वागता में लघु और रथोद्धता का दशम लघु वर्ण स्वागता में गुरु हो जाता है। शेष रथोद्धता की तरह होता है।

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ
केशेस्वादाय त्वं क्षितौ दुष्टशब्द–
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ
पर्यायोक्तिस्पृग् यावदालोठयोऽरीन्।
ऽऽऽऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ
तावत्तन्नार्यो दृक्पथं कीर्णकेश्य
ऽ ऽऽऽ ऽ ऽ। ऽ ऽ।ऽ ऽ
आजग्मुस्ते भोः शर्मदे ! वैश्वदेवि !॥२३॥

अन्वयः

भोः शर्मदे ! वैश्वदेवि ! दुष्टशब्दपर्यायोक्तिस्पृग् त्वं यावत् क्षितौ अरीन् आलोठयः, तावत् तत् नार्यः कीर्णकेश्यः ते दृक्पथं आजग्मुः।

शब्दार्थ –

शर्मदे – कल्याण प्रदान करनेवाली, **वैश्वदेवि** – सारे संसार से पूजित देवी, **दुष्टशब्दपर्यायोक्तिस्पृक्** – दुष्ट और उसके पर्याय दुरात्मा, दुराचारी आदि शब्दों से फटकार लगानेवाली, **कीर्णकेशः** – बिखरे बालोंवाली।

संस्कृत टीका –

॥केशेष्विति॥ भोः शर्मदे ! कल्याणदायिनि ! वैश्वदेवि ! विश्वस्य जगत इयं वैश्वी, सा चासौ देवीति वैश्वदेवी, जगत्पूज्येति भावः। तत्सम्बुद्धौ हे वैश्वदेवि ! दुष्टशब्दस्य पर्याया दुरात्मादयस्तेषाम् उक्तिः कथनं तां स्पृशति सेवते तादृशी, रे दुष्ट ! रे दुरात्मन् ! इत्यादि भाषमाणेति भावः। त्वं यावत् क्षितौ भूतले, अरीन् शत्रून्, आलोठयः इतस्तत आघूर्णयः; तावत्, तेषाम् अरीणां नार्यः स्त्रियः, कीर्णा विकीर्णाः केशाः कचा याभिस्तथोक्ताः (सत्यः) ते तव दृक्पथं दृष्टिमार्गम्, आजग्मुः आययुः। स्वभर्तृमरणेन विकीर्णकेश्य एव त्वद्दर्शनपथमागता इत्यर्थः॥

अत्र देवीकृत–रिपुलोठन–वर्णनरीत्या, ततश्च रिपुनारी–विकीर्ण-केशदर्शनरीत्याऽतत्परतया जल्प्यमानेन वस्तुना विवक्षितं रिपुमरणं प्रतीयतेऽतः पर्यायोक्ति अलंकारः। तल्लक्षणं तु **"अतत्परतया यत्र, जल्प्यमानेन वस्तुना। विवक्षितं प्रतीयेत पर्यायोक्तिरियं यथा॥"** इति॥

किञ्चात्र सप्तम–दशमयोर्ह्रस्वतयाऽन्येषां च दीर्घतया विरचनेन, पञ्चभिः सप्तभिश्च विश्रामदर्शनाद् वैश्वदेवीवृत्तम्। तल्लक्षणं तु **"ह्रस्वो वर्णः स्यात्सप्तमो यत्र बाले !, तद्वत् बिम्बोष्ठि ! न्यस्त एकादशाद्यः। बाणैर्विश्रामस्तत्र चेद्वास्तुरंगैर्नाम्ना निर्दिष्टा सुभ्रु ! सा वैश्वदेवी॥"** इति॥२३॥

भाषा टीका –

हे कल्याणदायिनी ! जगत्पूज्या देवी ! जैसे ही आप ने दुष्ट आदि शब्दों से धिक्कार देकर और केश पकड़कर शत्रुओं को पृथ्वी पर

लुटाये, त्यों ही उनकी स्त्रियाँ केश बिखेर कर आपके सामने नजर आईं। अर्थात् शत्रु मर गये। इसलिए उन्होंने केश बिखेरे॥२३॥

पर्यायोक्ति अलंकार –

जहाँ कथन से वास्तविक अर्थ न मालूम हो, वर्ण्यमान वस्तु से चाहा हुआ अर्थ निकल आये वहाँ पर्यायोक्ति अलंकार होता है।

यहाँ वास्तविक अर्थ शत्रुओं का मरना है जो देवी द्वारा केश पकड़ कर शत्रुओं को भूमि पर लुटाने और उनकी स्त्रियों के खुले केशों के वर्णन से प्रकट होता है।

वैश्वदेवी छन्द –

यह १२ अक्षरों का छन्द है। इसमें सातवाँ और दसवाँ अक्षर लघु होता है तथा पाँचवें और सातवें पर विराम होता है।

I I S I I S I I S I I S

तव देवि ! समाहितहृत्तु यदाऽ–

I I S I I S I I S I I S

यितुमिच्छति तीर्थमसौ सुजनः।

I I S I I S I I S I I S

नवरात्रकपर्व तदाऽस्य भव–

I I S I I S I I S I I S

त्यतिसंनिहितं हृततोटकथम्॥२४॥

अन्वयः

देवि ! यदा तु समाहित हृत् असौ सुजनः तव तीर्थं अयितुं इच्छति, तदा अस्य हृततोटकथं नवरात्रकपर्वं संनिहितं भवति।

शब्दार्थ –

समाहित हृत् – स्वस्थ मन से, **अयितुं** – जाना,

हृततोटकथं – कलहादि दूर करनेवाला ।

संस्कृत टीका –

॥तवेति॥ हे देवि ! यदा समाहृत् समवहितमनाः असौ सुजनः

साधुलोकः, तव ते, तीर्थं दधिमथीक्षेत्रमित्यर्थः। अयितुं गन्तुमिच्छति वाञ्छति इति; तदाऽस्य (सुजनस्य), हृता दूरीकृता तोटस्य कलहकर्मणः कथा येन तत् तथोक्तम्। 'तुट कलहकर्मणि' इत्यस्य घञितोट्इति रूपम्। कलहकर्मनिवारकमिति भावः। इत्यनेन देवीप्रभावात्तादृशे जायमानेऽपि जनसंमर्दे नवरात्रपर्वणि मिथः कलहादिकं न भवतीति ध्वनितम्। तादृशं नवरात्रकपर्व, नवरात्रयः समाहृता नवरात्रम्। ''अर्हः सर्वैकदेश'' इत्यादिनाच् 'संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम्' इति क्लीबत्वम्। तदेव नवरात्रकम्। स्वार्थे कः। तस्य पर्व उत्सवोऽवसरो वा। अतिसंनिहितम् अतीवाऽऽसन्नं भवति। नवरात्रोत्सवा हि वत्सरे चैत्राषाढाश्विनमाघेषु चतुर्षु मासेषु चत्वारो भवन्ति, तत्रैकतरैस्तु कश्चन संनिहितो भवेदेव तीर्थं जिगमिषतो लोकस्य इत्यर्थः।

अत्र तीर्थगमनेच्छारूपस्य कार्यस्यारम्भे पुनस्तत्प्रेरकं नवरात्रपर्वसांनिध्यं कारणान्तरं दैवाज्जायमानं वर्णितमतः समाहितमलंकारः। तल्लक्षणं **'कारणान्तरसंपत्तिर्दैवादारम्भ एव हि। यत्र कार्यस्य जायेत, तज्जायेत समाहितम्॥'** इति॥

किञ्चात्र तृतीय-षष्ठ-नवमवर्णानां विरामस्थानीयस्य द्वादशस्य च वर्णस्य गुरुत्वात्, तदन्येषां च लघुत्वात् तोटकं वृत्तम्। **'सतृतीयकषष्ठमनन्ती (ञ्ज) रते, नवमं विरतिप्रभवं गुरु चेत्। घनपीनपयोधरभारनते ! ननु तोटकवृत्तमिदं कथितम्॥'** इति॥२४॥

भाषा टीका –

हे देवी ! जब कि भक्तिमान सज्जन आपके तीर्थ को जाना चाहता है। अर्थात् जिस समय जाने की इच्छा करता है; उस समय कलहादि दूर करनेवाला नवरात्र का उत्सव उसके पास ही आ जाता है। अर्थात् वर्ष में चार नवरात्र आते हैं, जैसे – चैत्र नवरात्र, आषाढ नवरात्र, आश्विन नवरात्र, और माघ नवरात्र। इनमें से कोई तो एक पास आता ही है, अतः अवश्य ही जाता है॥२४॥

समाहित अलंकार –

जहाँ कार्य के आरम्भ में संयोगवश अन्य कारण उपस्थित हो जाय जिससे कार्य सम्पन्न हो जाय, उसे समाहित अलंकार कहते हैं।

यहाँ तीर्थ में जाने की इच्छा रूपी कार्य के आरम्भ में ही भाग्यवश अन्य कारण नवरात्र पर्व आ जाता है जिससे तीर्थ जाने का कार्य पूर्ण हो जाता है।

तोटक छंद –

तोटक १२ वर्णों का छन्द होता है। इसमें तीसरा, छठा, नवाँ और अन्त्य (बारहवाँ) वर्ण गुरु होता है।

।ऽऽ। ऽऽ ।ऽऽ।ऽऽ

गृहीत्वेभ(श)यातं परीवर्त्तयोग्यं

। ऽऽ।ऽऽ । ऽ ऽ ।ऽ ऽ

भुजङ्गप्रयातं ह्यदा द्विड्वधूभ्यः।

। ऽऽ। ऽ ऽ ।ऽ ऽ । ऽ ऽ

उपादाय सौभाग्यवत्तां च ताभ्यो

।ऽ ऽ । ऽऽ ।ऽ ऽ ।ऽ ऽ

ददासि स्म दौर्भाग्यवत्त्वं त्वमम्ब ! ॥२५॥

अन्वयः

अम्ब ! त्वं द्विड् वधूभ्यः परीवर्त्तयोग्यं इभयातं (ईशयातं वा) उपादाय भुजंगप्रयातं हि अदाः, च ताभ्यः सौभाग्यवत्तां उपादाय दौर्भाग्यवत्तां ददासि स्म।

शब्दार्थ –

परीवर्त्तयोग्यं – मन चाहे, **इभयातं** – हाथी पर बैठ कर गमन, **ईशयातं** – पति के पास गमन, **भुजंगप्रयातं** – सर्पवत् वनों आदि में विचरण करना, **अदाः** – प्रदान किया ।

संस्कृत टीका –

॥गृहीत्वेति॥ हे अम्ब ! मातः ! त्वं, द्विषां रिपूणां वधूभ्यः

स्त्रीभ्य: परीवर्त्तयोग्यं वरणार्हे, स्पृहणीयमिति भाव:। इभयातं इभेषु हस्तिषु यातं गमनं, तद् गृहीत्वा उपादाय, भुजङ्गेषु सर्पेषु यातं गमनं (हि निश्चयेन) अदा: दत्तवती। सर्पेषु गमनेन कान्तारनि वा सस्तासां प्रकटित:। ईशयातमिति पाठे, ईशे स्वपतौ यातं गमनं, तद् गृहीत्वा, भुजङ्गेषु विटेषु प्रयातं गमनम् अदा: इत्यर्थो ज्ञेय:। च पुन: ताभ्यो रिपुस्त्रीभ्य: सौभाग्यवत्तां सौभाग्यम् उपादाय, दौर्भाग्यवत्त्वं दौर्भाग्यं, ददासि स्म दत्तवती। इत्यर्थ:।

अत्रेभ (श) यातरूपस्यार्थस्य भुजङ्गप्रयातरूपेणार्थेन सदृशतया, तथा दौर्भाग्यस्य सौभाग्येनाऽसदृशतया परिवर्त्तनात्परिवृत्तिरलङ्कार:। तल्लक्षणं तु **'परिवर्त्तनमर्थेन, सदृशाऽसदृशेन वा। जायतेऽर्थस्य यत्राऽसौ, परिवृत्तिर्मता यथा॥'** इति॥

अपि चात्र प्रथम-चतुर्थ-सप्तम-दशमवर्णानां ह्रस्वतयाऽन्येषां च दीर्घतया ग्रथनेन भुजङ्गप्रयातं वृत्तम्। तल्लक्षणं तु **'यदाद्यं चतुर्थं तथा सप्तमं स्या-त्तथैवाक्षरं ह्रस्वमेकादशाद्यम्। शरच्चन्द्र-विद्वेषिवक्त्रारविन्दे !, तदुक्तं कवीन्द्रैर्भुजङ्गप्रयातम्॥'** इति॥२५॥

भाषा टीका –

हे देवि ! आपने शत्रुओं की स्त्रियों से हाथियों पर चलना लेकर सर्पों में चलना दिया और सौभाग्य (सौहाग) लेकर दौर्भाग्य (दौहाग) दिया। अर्थात् आपने जब शत्रुओं को मारे, तब उनकी स्त्रियों ने हाथी पर बैठने आदि भोग छूटने से सर्पयुक्त बन में रहना शुरू किया, इसी लिए दौहागपन पाया॥२५॥

परिवृत्ति अलंकार –

जहाँ अर्थ का समान या असमान अर्थ में परिवर्त्तन हो जाय, वह परिवृत्ति अलंकार है।

यहाँ हाथी से जाने के अर्थ का सर्पवत् जाने के अर्थ की समानता है और सौभाग्य का दुर्भाग्य में बदलना असमानता है। सदृश और असदृश दोनों ही समान के अर्थ का यहाँ परिवर्त्तन है।

भुजङ्गप्रयात छन्द –

यह १२ अक्षरों का होता है। इसमें प्रथम, चतुर्थ, सप्तम और दशम वर्ण लघु होते हैं।

। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ
मधुकृदम्ब ! यथा क्रमनीरजं
। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ
द्रुतविलम्बितयातमहं श्रये।
। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ
जयति यन्निजभा–मृदुता–गतैः
। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ
किसलयं च बिसं च सितच्छदम्॥२६॥

अन्वयः

हे अम्ब ! यथा मधुकृत् (तथा) अहं (ते) द्रुतबिलम्बितयात क्रमनीरजं श्रये। यत् निजभा मृदुता गतैः किसलयं बिसं च सितच्छम् च जयति।

शब्दार्थ –

मधुकृत् – भ्रमर, **द्रुतविलम्बितयात** – मन्द और तीव्रगति वाले, **क्रमनीरजं** – चरण कमल का, **श्रये** – आश्रय लेता हूँ, **भाः** – कान्ति, **गतैः** – गमन से, **बिसं** – कमल नाल को, **सितच्छदं** – हंस को।

संस्कृत टीका –

॥मध्विति॥ हे अम्ब ! दधिमथि ! यथा मधुकरो भ्रमरस्तथाऽहं द्रुतं शीघ्रं विलम्बितं मन्दं च यातं गमनं यस्य तत्तथाभूतं क्रमनीरजं चरणारविन्दं, 'क्रमः कल्पांघ्रिशक्तिषु। परिपाठ्यां' इति हैमः। जातित्वादेकवचनम्। श्रये सेवे। यथा हि भ्रमरः कमलं सेवते, तथाऽहं तव पादरूपं कमलं श्रय इति तात्पर्यम्। यत् (क्रमनीरजं), निजानि यानि भा–मृदुता–गतानि कान्ति–कोमलता–गमनानि तैः, किसलयं पल्लवं, बिसं

मृणालं च, सितच्छदं हंसं च; जयति अभिभवति। कान्त्या किसलयं, कोमलतया बिसं, गमनेन च हंसं जयतीत्यर्थः॥

अत्रोक्तानां भा-मृदुता-गतरूपाणां पदार्थानां सम्बन्धिनः तत्क्रमेणैव किसलय-बिस-सितच्छदरूपा अर्था निबद्धा अतो यथासंख्यमलंकारः। स च तत्पर्याय 'यथाक्रम' शब्देन मूले सूचितः, द्रुतविलम्बितवृत्ते यथासंख्यशब्दस्यागमनाऽसम्भवात्। तल्लक्षणं तु **'यत्रोक्तानां पदार्थानामर्थाः सम्बन्धिनः पुनः। क्रमेण तेन बध्यन्ते, तद्यथासंख्यमुच्यते॥'** इति॥

किञ्चात्र चतुर्थ-पञ्चम-दशमान्त्यानां वर्णानां गुरुत्वेनाऽन्येषां च लघुत्वेन रचनाद् द्रुतविलम्बितं वृत्तम्। तल्लक्षणं तु **'अयि कृशोदरि ! यत्र चतुर्थकं, गुरु च सप्तमकं दशमांतिमम्। विरतिगं च तथैव सुमध्यमे !, द्रुतविलम्बितमित्युपदिश्यते॥'** इति॥२६॥

भाषा टीका –

हे देवी ! भ्रमर की तरह मैं, शीघ्र और मन्दगतिवाले आपके चरणरूप कमल का आश्रय करता हूँ। जो कि चरणकमल कान्ति से नवीन पत्र को, कोमलता से कमलतन्तु को और गमन से हंस को जीतता है॥२६॥

यथासंख्य अलंकार –

जहाँ कहे गये पदार्थों से सम्बन्धित अर्थ फिर उसी क्रम में बताए जायँ वहाँ यथासंख्य अलंकार होता है।

यहाँ कान्ति, कोमलता और गमन कहे गये इन तीन अर्थों के लिए फिर क्रमशः तीन सम्बन्धित अर्थ किसलय, कमलनाल और हंस बताए गए हैं। क्रम का ठीक-ठीक निर्वाह होने से यह यथासंख्य अलंकार है। श्लोक का छन्द द्रुतबिलम्बित है जिसमें अक्षरों की योजना के अन्तर्गत 'यथासंख्य' शब्द नही आ सकता था, अतः उसका पर्याय 'यथाक्रम' दिया गया है।

द्रुतविलम्बित छन्द –

यह भी १२ वर्णों का छन्द है। इसमे चौथा, सातवाँ, दसवाँ तथा अन्त्य (बारहवाँ) अक्षर गुरु होता है।

। । ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ
विषमं क ते महदहो चरितं

। । ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ
प्रमिताक्षरा क नु ममोक्तिरियम्।

। । ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ
अत एव भो दधिमथि ! प्रणतिं

। । ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ
कलयामि केवलमहं विनयात्॥२७॥

अन्वयः

भो दधिमथि ! अहो तव विषमं महद् चरितं क (अस्ति)? मम इयं प्रमिताक्षरा उक्तिः क नु ? अत एव अहं केवलं विनयात् प्रणतिं कलयामि।

शब्दार्थ –

विषमं – गहन, **प्रमिताक्षरा** – सीमित अक्षरों वाली

संस्कृत टीका –

॥ विषममिति॥ भो दधिमथि ! अहो इत्याश्चर्ये, तव ते विषमं गहनं चरितं वर्णनीयं वृत्तं क कुत्र ?, नु तर्के, इयं प्रमिताक्षरा परिमितवर्णवती उक्तिर्भणितिः क, अस्त्विति शेषः। अत एवाऽहं, केवलं, विनयात् नम्रतया, प्रणति प्रणामं, कलयामि करोमि। त्वच्चरितवर्णनाऽशक्त्याऽहं प्रणाममात्रं करोमीति भावः। इत्यर्थः॥

अत्र विषमचरितवस्तुवर्णनरूपः सम्बन्धः उक्तेः प्रमिताक्षरत्वरूपेणानौचित्येन असम्भाव्यो वर्णित इत्यतो विषमालङ्कारः। तल्लक्षणं तु **'वस्तुनो यत्र सम्बन्धमनौचित्येन केनचित्। असम्भाव्यं वदेद्वक्ता, तमाहुर्विषमं यथा॥'** इति॥

अथ चात्र पञ्चमस्य वर्णस्य गुरुतया, षष्ठस्य च लघुतया, अन्येषां च पूर्वोक्ततोटकवृत्तानुसारेण विरचनात्प्रमिताक्षरावृत्तम्। तल्लक्षणं तु **'यदि तोटकस्य गुरु पञ्चमकं, विहितं विलासिनि ! तदक्षरकम्। रससंख्यकं गुरु न चेदबले !, प्रमिताक्षरेति कविभिः कथिता।।'** इति २७।।

भाषा टीका –

हे दधिमथी ! आपका गहन चरित कहाँ रहा, और मेरी अल्प अक्षरवाली उक्ति कहाँ ? इसलिए हे देवी ! मैं केवल आपके लिए विनय से प्रणाम ही करता हूँ। अर्थात् मैं अपनी अल्प उक्ति से आपके गहन चरित का वर्णन नहीं कर सकता, केवल प्रणाम ही करता हूँ।।२७।।

विषम अलंकार –

जिसमें वक्ता दो वस्तुओं के सम्बन्ध को उचित न होने के कारण असम्भव बताए, वहाँ विषम अलंकार होता है।

प्रस्तुत श्लोक में देवी का चरित्र महान और गहन होने के कारण सीमित शब्दों में वर्णन कर पाना अनुचित और असम्भव है, अतः यहाँ विषम अलंकार है।

प्रमिताक्षरा छन्द –

यदि तोटक छन्द का पाँचवाँ अक्षर गुरु हो और छठा अक्षर लघु हो तो कविजन उसे प्रमिताक्षरा छन्द कहते हैं। ये दोनों ही (तोटक और प्रमिताक्षरा) छन्द १२ अक्षरों के होते हैं। तोटक में छठा वर्ण गुरु और पाँचवाँ लघु होता है। इन दोनों वर्णों के विपर्यय से प्रमिताक्षरा छन्द बन जाता है। (देखें – तोटक, श्लोक २४) तात्पर्य यह कि इसमें तीसरे, पाँचवें, नवें और बारहवें वर्ण गुरु होंगे।

। । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ (११)

यश आदित या निजवैरिणा–

। । । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ (१२)

मसुभिरेव सहोक्तिसुरीस्तुतम्।

। । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ (११)

लघु सैतु यथा हरिणीप्लुता

। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ (१२)

दधिमथी सुमुदा सह हृद्वनम्॥२८॥

अन्वयः

या निजवैरिणां असुभिः एव सह उक्तिसुरी स्तुतं यशः आदित। सा दधिमथी यथा प्लुता हरिणी (तथा मम) हृद् वनं सुमुदा सह लघु एतु।

शब्दार्थ –

असुभिः सह – प्राणों के साथ, **उक्तिसुरी** – सरस्वती, **प्लुता** – उछलती हुई, **सुमुदा** – प्रसन्नता के साथ।

संस्कृत टीका –

॥यश इति॥ या (दधिमथी), निजवैरिणा स्वरिपूणां, असुभिः प्राणैरेव सह समं, उक्तिसुरी वाग्देवी सरस्वतीति यावत्। तया स्तुतं प्रशस्तं, अत्युज्ज्वलतया सरस्वत्यापि श्लाघितमिति भावः। यशः कीर्तिम् आदिति, अग्रहीत्। आदाञो लुङि "आङोदो" इत्यादिना तङि "स्थाध्वोरिच्च" इतीत्वं सचः कित्वं च। रिपुमरणसमकालमेव तदीयं यशोऽस्याः पार्श्व आगतमिति तात्पर्यम्। सा दधिमथी, यथा यद्वत्, प्लुता उच्छलिता, हरिणी मृगी, तथा हृद्वनं हृदयकाननं ममेति शेषः। सुमुदा शोभनहर्षेण, सह, एतु आगच्छतु। तदागमनसमकालमेव मम हृदये मुदागमनमस्त्विति प्रत्याशा। तस्या हृद्वासे हर्ष उचित एवेत्यर्थः॥

अत्र पूर्वार्द्धेऽसुग्रहणरूपस्य कारणस्य यशोग्रहणरूपकार्यशक्ततां वक्तुं तयोरसुयशोग्रहणरूपयोः हेतुकार्ययोः सह समुत्पत्तिकथा दर्शिता,

उत्तरार्द्धेऽप्येवमेव देवी–मुदा–गमनयोर्हेतुकार्ययो: सहोत्पत्तिर्वर्णिताऽत: सहोक्त्यलंकार:। तल्लक्षणं तु **'सहोक्ति: सा भवेद्यत्र, कार्यकारणयो: सह। समुत्पत्तिकथा हेतोर्वक्तुं तज्जन्मशक्तताम्॥'** इति॥

किञ्चात्र प्रथम–तृतीयपादयोराद्याक्षराभावेन पूर्वोक्तद्रुतविलम्बितवृत्तस्य विरचनाद् हरिणीप्लुतावृत्तम्। तल्लक्षणं तु **'प्रथमाक्षरमाद्यातृतीययोर्द्रुतविलम्बितकस्य हि पादयो:। यदि नास्ति[1] तदा कमलेक्षणे !, भवति सुन्दरि ! सा हरिणीप्लुता॥'** इति॥२८॥

भाषा टीका –

जिस (देवी) ने शत्रुओं के प्राणों के साथ ही, सरस्वती से भी प्रशंसा किये गये यश को ग्रहण कर लिया। वह दधिमथी देवी हर्ष के साथ दौड़ी हुई हरिणी की तरह (मेरे) हृदयरूप वन में आवें। अर्थात् शत्रुओं के मरते ही उनका यश देवी के पास आ गया। और उस देवी के आते ही हृदय में हर्ष भी आ जाता है॥२८॥

सहोक्ति अलंकार –

जहाँ कारण का और कारण के सामर्थ्य बताने वाले कार्य का एक साथ ही कथन किया जाय उसे सहोक्ति अलंकार कहते हैं।

यहाँ प्राण ग्रहण रूपी कारण यश प्राप्त करने वाले कार्य का सामर्थ्य बताने के लिए कार्य कारण का एक साथ वर्णन किया गया अर्थात् प्राण लेने के कारण ही तत्काल यश प्राप्त कर लिया। उत्तरार्द्ध में भी वही भाव है क्योंकि देवी के हृदय में आने के साथ-साथ हर्ष आ गया।

हरिणीप्लुता छन्द –

यदि द्रुतबिलम्बित के पहले और तीसरे चरण का पहला अक्षर न हो तो वह हरिणीप्लुता छन्द हो जाता है। तात्पर्य यह कि द्रुतबिलम्बित के चारों चरणों में १२ अक्षर होते हैं किन्तु हरिणीप्लुता के पहले और तीसरे चरण में ११,११ अक्षर ही होंगे। शेष द्रुत विलम्बित की तरह जानना चाहिए।

---

१. 'यदि चेन्न' पाठान्तर।

। ऽ । ऽऽ। । ऽ । ऽ । ऽ
युताऽपि सद्वेषतया विरोधहा
। ऽ । ऽ ऽ।। ऽ। ऽ। ऽ
रिपुं हि याऽऽहन्नरुदत्तु तद्वधूः।
। ऽ । ऽऽ ।। ऽ । ऽ । ऽ
उमाऽकुलीनत्वविराजिताऽपि सा
। ऽ । ऽऽ ।। ऽ । ऽ । ऽ
प्रशस्तवंशस्थनिजात्मकाऽवतात् ॥२९॥

अन्वयः

सद्वेषतया युता अपि विरोधहा। या (देवी) हि रिपुं आहन् तु तद् वधूः अरुदत्। या अकुलीनत्व विराजिता अपि प्रशस्तवंशस्थ निजात्मका (अस्ति), सा उमा (अस्मान्) अवतात्।

शब्दार्थ –

सद्वेषतया युता अपि विरोधहा – १.– (श्रवणकालिक विरोध पक्ष में) विरोध से युक्त होने पर भी विरोध का त्याग करनेवाली। २.– (तत्वतः विरोधपरिहार पक्ष में) उत्तम वेष (सद्+वेष) में स्थित विरोध न रखनेवाली। **रिपुं आहन् तु तद् वधूः अरुदत** १- मारा जाता है कोई (शत्रु) और रोती हैं वे जो नहीं मारी जातीं शत्रु की स्त्रियाँ २- पति को मरा जानकर उनकी उनकी स्त्रियाँ रोती हैं। **अकुलीनत्व विराजिता** – १- जो निन्दित कुल की है, २- जो कु अर्थात् धरती में लीन नहीं होती, पंचत्व को प्राप्त नहीं होती अर्थात् अमर है। **निजात्मका** – जिसकी स्वयं का आत्मा (सत्ता) है दूसरों से पैदा नहीं की गई है।

संस्कृत टीका –

॥युतेति॥ सद्वेषतया विरोधसहितत्वेन युताऽपि युक्ताऽपि, सद्वेषाऽपीति भावः। विरोधहा विरोधं द्वेषं जहाति त्यजति तथोक्ता। इति

विरोधः। सद्वेषतया शोभनवेशधारितया युता विरोधहीना च। इत्यर्थे विरोधपरिहारः। या हि (देवी) रिपुं शत्रुं, आहन् अताडयत्; तु परन्तु, तद्वधूः तस्य रिपोः वधूः स्त्री, अरुदत् रुदितवती। यस्य हि ताडनं स एव रुद्यान्नान्यः इत्यर्थकल्पनया विरोधाभासः। भर्तरि प्रहृते तस्य मृतप्रायत्वात्तत्स्त्रियो रोदनमुचितमेवेति तत्परिहारः। अकुलीनत्वं सद्वंशजन्माभावः, तेन विराजिता शोभिताऽपि, अकुलीनाऽपीति यावत्। प्रशस्तः श्लाघितो यो वंशः कुलं तत्र तिष्ठति तथोक्तो निजः स्वकीय आत्मा यस्याः सा। इति विरोधः। कौ पृथ्व्यां लीना स्थिता, तद्भावः कुलीनत्वं, तन्नेति तत्, तेन विराजिता शोभिता। देवीत्वात्स्वर्गवासिनीति भावः। सुवंश्या च इत्यर्थे तत्परिहारः। सा उमा देवी, अवतात् रक्षतु। अस्मानीति शेषः। इत्यर्थाः॥

अत्र सद्वेषतया युताऽपि विरोधहा, अकुलीनाऽपि प्रशस्तवंशस्थेपि शब्दविरोधः, तथा रिपोः प्रताडनं तद्वध्वाश्च रोदनमित्यर्थविरोध आभासते तत्त्वतश्च नास्तीति विरोधालंकारः। तल्लक्षणं तु **'आपाते हि विरुद्धत्वं; यत्र वाक्ये, न तत्त्वतः। शब्दार्थकृतमाभाति, स विरोधः स्मृतो यथा॥'** इति॥

अथ चात्रोपेन्द्रवज्रालक्षणोक्तान्तिमवर्णानामुपान्त्यतया लघूकरणेन वंशस्थवृत्तम्। तल्लक्षणं तु **'उपेन्द्रवज्राचरणेषु सन्ति चे–दुपान्त्यवर्णा लघवः परे कृताः। मदोल्लसद्भूर्जितकामकार्मुके !, वदन्ति वंशस्थमिदं बुधास्तदा॥'** इति ॥२९॥

भाषा टीका –

विरोध छोड़नेवाली भी सद्वेषा (द्वेषसहित) जिस देवी ने मारा शत्रु, और रोई उसकी स्त्री। वह अकुलीना (अच्छे कुल में न होनेवाली) भी अच्छे वंश में जन्म पाई हुई देवी रक्षा करे। इस अर्थ से विरोध झलकता है, पर वास्तव में उन शब्दों का ऐसा अर्थ करने से विरोध नहीं है। जैसे–सद्वेषा–सुन्दर पोशाकवाली, अकुलीना–पृथ्वी में लीन नहीं अर्थात्

स्वर्गवासिनी; भर्ता के मारने से स्त्री का रोना ठीक ही है॥२९॥

विरोध अलंकार –

जहाँ वाक्य के आरम्भ (आपात) में श्रवण से शब्दार्थ कृत विरोध मालूम पड़े किन्तु वास्तविक शब्दार्थ जान लेने के बाद तत्वतः विरोध न हो वहाँ विरोध अलंकार जानना चाहिए।

प्रस्तुत श्लोक में सद्वेष और अकुलीन आदि ऐसे ही शब्द हैं जिन्हें श्रवण मात्र से विरोध ज्ञात हो रहा है किन्तु उन शब्दों का वास्तविक अर्थ समझने पर विरोध का परिहार हो जाता है।

वंशस्थ छन्द –

यदि उपेन्द्रवज्रा के प्रत्येक चरण में ११ वाँ (उपान्त्य) लघु हो (शेष यथावत् हो) तो वह वंशस्थ वृत्त होता है। उपेन्द्रवज्रा और वंशस्थ दोनों १२ अक्षरों के छन्द हैं। (देखें श्लोक १७ एवं १८)

ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ

सैषाऽस्ति दुर्गाऽवसरन्महामहा

ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ

यत्पाणिसंताडनयैव सोऽसुरः।

ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ

संमूच्छर्य सद्यो विकटास्य उत्कटो–

ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ

जा इन्द्रवंशार्तिकरोऽपतद्भुवि॥३०॥

अन्वयः

अवसरत् महा महा एषा सा दुर्गा अस्ति, यत् पाणिसंताडनया एव स उत्कटोजा इन्द्रवंशा आर्तिकरः विकटास्यः असुरः सद्यः संमूर्च्छ्य भुवि अपतत्।

शब्दार्थ –

अवसरत् – फैलाती हुई, **महा महा** – अपार तेज,

उत्कटोजा – अत्यन्त तेजस्वी, **इन्द्रवंशं** – जयन्त आदि को,

आर्तिकरः – कष्ट पहुँचानेवाला, **विकटास्य** – इस नाम का असुर

संस्कृत टीका –

॥सेति॥ अवसरत् प्रसरत् महद् बृहद् महस्तेजो यस्याः सा तथोक्ता एषा सा दुर्गा देवी (दधिमथी) अस्ति, यस्याः पाणिसंताडना करतलप्रहारः तयैव, स प्रसिद्धः, उत्कटौजाः प्रकृष्टतेजाः, इन्द्रस्य यो वंशः कुलं जयन्तादय इति भावः। तस्य आर्तिकरः पीडादायी देवव्यथादायीति भावः। विकटास्यः तन्नामा, असुरो दैत्यः, सद्यः तत्कालं, संमूर्च्छ्य मूर्च्छां प्राप्य, भुवि पृथ्व्यां अपतत् पपात। इत्यर्थः॥

अत्र देवीवर्णनरूपस्य प्रस्तुतार्थस्य उपलक्षणं विकटास्यहननरूपमुत्कृष्टमर्थान्तरमुक्तं, अतोऽवसरालंकारः। तल्लक्षणं तु **'यत्रार्थान्तरमुत्कृष्टं, संभवत्युपलक्षणम्। प्रस्तुतार्थस्य स प्रोक्तो, बुधैरवसरो यथा'** ॥इति॥

अत्र वंशस्थलक्षणोक्तपूर्वाक्षराणां गुरुतया निर्माणादिन्द्रवंशावृत्तम्। तल्लक्षणं तु **'यस्यामशोकाङ्कुरपाणिपल्लवे !, वंशस्थपादा गुरुपूर्ववर्णकाः। तारुण्यहेलारतिरङ्गलालसे ! तामिन्द्रवंशां कवयः प्रचक्षते॥'** इति॥३०॥

भाषा टीका –

यह अपार तेजवाली दधिमथी देवी है, जिसके हाथों की ताडना से ही, वह इन्द्रकुल को दुःख देनेवाला तेजस्वी दैत्य विकटास्य, एकदम मूर्छा पाकर पृथ्वी पर पड़ गया॥३०॥

अवसर अलंकार –

जहाँ प्रस्तुत अर्थ का कोई अन्य अर्थ दृष्टान्त रूप में प्रकट हो, वहाँ अवसर अलंकार होता है।

यहाँ देवीवर्णन रूप प्रस्तुत अर्थ का विकटास्य का वध रूप अन्य अर्थ दृष्टान्त स्वरूप प्रकट हो रहा है, अतः अवसर अलंकार है।

इन्द्रवंशा छन्द –

जिसमें वंशस्थ के चारों चरणों के प्रथम अक्षर गुरु हों। वंशस्थ के चरणों के प्रथम अक्षर लघु होते हैं, गुरु हो जाने से इन्द्रवंशा छन्द बन जायेगा। दोनों ही छन्द १२ अक्षरों के होते हैं।

ऽऽ ।ऽ । । । । ऽ । ऽ । ऽ
सारं भवे दधिमथि ! सु प्रभावती

ऽ ऽ । ऽ । । ।। ऽ । ऽ। ऽ
सुप्राणिताऽत्र च नरताऽत्र विप्रता।

ऽ ऽ । ऽ । ।। । ऽ । ऽ । ऽ
तत्राऽपि षट्कृतिरतता ततोऽप्यहो

ऽ ऽ । ऽ । । । ।ऽ । ऽ ।ऽ
त्वद्भक्तताऽत इह भजे त्वकामहम् ॥३१॥

अन्वय:

दधिमथि ! भवे सुप्रभावती सुप्राणिता च सारम्, अत्र च नरता (सारम्), अत्र (च) विप्रता (सारम्), तत्र अपि षट्कृतिरतता (सारम्),अहो तत: त्वत् भक्तता (सारम्), अत: अहं इह त्वकां भजे।

शब्दार्थ –

सुप्रभावती – तेजस्विता, **सुप्राणिता** – सुन्दर स्वस्थ शरीर और धन-धान्य सम्पन्न उत्तम प्राणी होना, **षट्कृतिरतता** – ब्राह्मण के छ: कर्मों (१. विद्या पढ़ना २. विद्या पढ़ाना ३. यज्ञ करना ४. यज्ञ कराना ५. दान देना ६. दान लेना) में संलग्नता।

संस्कृत टीका –

॥सारमिति॥ हे दधिमथि ! भवे संसारे सुप्रभावती शोभनकान्तिमती तेज:शालिनीति भाव:। सुप्राणिता उत्तम-शरीरित्वं करिधेन्वादिकमिति भाव:। सारम् अत्र च सुप्राणितायामपि नरता मनुष्यत्वं

सारं, अत्र मनुष्यतायामपि विप्रता ब्राह्मणत्वं सारं, तत्राऽपि ब्राह्मणतायामपि षट्कृतिरतता षट्कर्मपरायणत्वं सारं, ततोऽपि ततः परं त्वद्भक्तता त्वत्सेवकत्वं सारं, अतः कारणात्, अहम् इह संसारे, त्वकां त्वां, भजे सेवे। संसारसारभूतस्त्वद्भक्तो भवामिति भावः। इत्यर्थः॥

अत्र सुप्राणितादिनिर्धारितात्साराततस्ततो नरत्वविप्रत्वादिकं सारं निर्धारितमतः सारालंकारः। तल्लक्षणं तु **'यत्र निर्द्धारितात्सारात्सारं सारं ततस्ततः। निर्द्धार्यते यथाशक्ति, तत्सारमिह कथ्यते॥'** इति॥

किञ्चात्र प्रथमयोर्द्वयोर्वर्णयोश्चतुर्थ-नवमैकादश-त्रयोदशानां च वर्णानां गुरुतया चतुर्भिर्नवभिश्च विश्रामदर्शनात् प्रभावतीवृत्तम्। तल्लक्षणं तु **'यस्यां प्रिये ! प्रथमकमक्षरद्वयं, तुर्यं तथा गुरु नवमं दशान्तिमम्। सान्त्यं भवेद्यतिरपि चेद्युगग्रहैः सा लक्ष्यताममृतरुते ! प्रभावती॥'** इति॥३१॥

भाषा टीका –

हे दधिमथी ! संसार में तेजस्वी अच्छा प्राणी होना सार है और उसमें भी मनुष्यपन, उसमें भी ब्राह्मण होना, वहाँ भी पठन-पाठनादि ६ कर्मों में तत्पर रहना सार है। उसमें भी तेरा भक्त होना सार है। इसलिए इस संसार में आपका सेवन करता हूँ॥३१॥

सार अलंकार –

जहाँ निर्धारित सार का सार बताया जाय और फिर सार के भी सार बताए जायँ वहाँ सार अलंकार होता है।

यहाँ सुप्राणिता आदि निर्धारित सार हैं उसका भी सार क्रमशः नरता, ब्राह्मणत्व, षट्कर्म में संलग्नता और फिर सब का सार देवी की भक्ति को बताया गया है, अतः यहाँ सार अलंकार है।

प्रभावती छन्द –

जिसमें प्रथम द्वितीय, चतुर्थ, नवम, एकादश तथा त्रयोदश (अन्त्य) वर्ण गुरु हों और चौथे तथा नौवें पर विराम हो, वह प्रभावती छन्द है प्रभावती छन्द १३ अक्षरों का होता है।

ऽ ऽ ऽ । । । । ऽ । ऽ । ऽ ऽ
संराजत्यधिगतशङ्करोत्तमाङ्गा-

ऽ ऽ ऽ । । । । ऽ । ऽ । ऽ ऽ
श्लेषश्रीः श्रितगणसम्प्रहर्षिणी या।

ऽ ऽ ऽ । । । । ऽ । ऽ । ऽ ऽ
सा युष्मान्पृथुलहरिस्थितिः सुपूज्य-

ऽ ऽ ऽ । । । । ऽ । ऽ । ऽ ऽ
सत्तीर्था समवतु हैमवत्यपंका ॥३२॥

अन्वयः

अधिगतशङ्करोत्तमाङ्गा आश्लेषश्रीः श्रितगणसम्प्रहर्षिणी या संराजति, सा पृथुलहरिस्थितिः सुपूज्य सत्तीर्था अपंका हैमवती युष्मान् समवतु।

शब्दार्थ –

अधिगतशङ्करोत्तमाङ्ग आश्लेषश्रीः – पार्वती पक्ष – शंकर के उत्तम अंगों से आलिंगित शोभावाली (अर्थात् अर्द्धाङ्ग सुशोभिता), **गंगा पक्ष** – शिव शीश पर विराजमान शोभावाली। **श्रितगणसम्प्रहर्षिणी – पार्वती पक्ष** – आश्रित प्रमथ आदि गणों को आनन्दित करने वाली, **गंगापक्ष** – सेवा करने वाले भक्तों (गणों) को आनन्दित करनेवाली, **पार्वती पक्ष – पृथुलहरिस्थिता** – स्थूलकाय सिंह (हरि) पर सवार, **गंगापक्ष** – बड़ी-बड़ी लहरोंवाली (पृथु + लहरि), सुपूज्य सत्तीर्था – **पार्वती पक्ष** – जिसका उत्तम पूज्य क्षेत्र (तीर्थ) प्रसिद्ध है, **गंगा पक्ष** – उत्तमपूज्य तीर्थोंवाली, **अपंका – पार्वती पक्ष** – पाप रहित, **गंगा पक्ष** – कीचड़ रहित, **हैमवती – दोनों पक्ष** – हिमालय से उत्पन्न।

संस्कृत टीका –

॥समिति॥ अधिगता प्राप्ता शङ्करस्य शिवस्य उत्तमैः अंगैः

आश्लेषश्रीरालिङ्गनलक्ष्मीर्यया सा तथाभूता, श्रित आश्रितो यो गणः प्रमथगणस्तं सम्प्रहर्षयति सम्मोदयति तथोक्ता, या संराजति शोभते; सा, पृथुले पीवो हरौ सिंहे स्थितिरध्यासनं यस्याः सा तथोक्ता, सिंहवाहनेति भावः। सुपूज्यं पूजार्हं सत् प्रशस्तं तीर्थं क्षेत्रं यस्याः सा तथोक्ता, अपंका अपापा, हैमवती देवी (दधिमथी) युष्मान्, समवतु रक्षतु॥ अथ हिमवतः प्रभवति हैमवती गङ्गापि भवति तत्पक्षे–अधिगता प्राप्ता शंकरस्योत्तमाङ्गे शिरसि आश्लेषश्रीः सम्पर्कलक्ष्मीर्यया सा, तथा श्रितानामाश्रितानां भक्तानामिति भावः। यो गणः समूहस्तं सम्प्रहर्षयति तथोक्ता, या संराजति; सा पृथूनां महतीनां लहरीणां वीचीनां स्थितिर्यस्यां सा तथाभूता, सुपूज्यं तीर्थम् ऋषिसेवितजलं यस्यां सा तथोक्ता, 'तीर्थं शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायोपाध्यायमन्त्रिषु। अवतारर्षिजुष्टाम्भःस्त्रीरपःसु च विश्रुतम्' इति विश्वः। अपंका अकर्दमा निर्मलेति यावत्। हैमवती गंगा, समवतु। इत्यर्थः॥

अत्रैकमपि वाक्यं 'गण' इत्यादिभिस्तैरेव पदैः, 'पृथुलहरि' इत्यादिभिन्नपदैश्च एकस्माद्देवीवर्णनरूपादर्थाद् अन्यं गङ्गावर्णनरूपमर्थं वक्ति; अतः श्लेषोऽलंकारः। तल्लक्षणं तु **'पदैस्तैरेव भिन्नैर्वा, वाक्यं वक्त्येकमेव हि। अनेकमर्थं यत्रासौ, श्लेष इत्युच्यते यथा॥'** इति॥

किञ्चात्र त्रयाणां प्रथमवर्णानां अष्टम-दशम-द्वादश-त्रयोदशानां चाक्षराणां गुरुत्वात्तदन्येषां च ह्रस्वतया, त्रिभिर्दशभिश्च विश्रामसम्भवात्प्रहर्षिणीवृत्तम्। तल्लक्षणं तु **'आद्यं चेत्त्रितयमथाष्टमं नवांत्यं, द्वावन्त्यौ गुरुविरतौ सुभाषिते स्यात्। विश्रामो भवति महेशनेत्रदिग्भि-र्विज्ञेया ननु सुदति ! प्रहर्षिणी सा॥'** इति॥३२॥

भाषा टीका –

महादेव के उत्तम अंगों के साथ आलिंगन की शोभा पाई हुई, और आश्रित प्रमथगण को हर्षित करनेवाली जो (देवी) शोभा को प्राप्त

होती है। वह सिंह पर बैठी हुई, पूज्य तीर्थ (क्षेत्र) वाली, निष्पाप देवी तुम्हारी रक्षा करे। यह श्लोक गंगा का भी अर्थ बतलाता है, जैसे – महादेव के शिर पर रही हुई, भक्तों को खुश करनेवाली जो शोभित है। वह बड़ी-बड़ी लहरियों से शोभित, पूज्य तीर्थ (पवित्र जल) वाली, निर्मल गंगा तुम्हारी रक्षा करें।।३२।।

श्लेष अलंकार –

जहाँ एक वाक्य या उसके पदों से भिन्न-भिन्न अनेक अर्थ निकलें, वहाँ श्लेष अलंकार होता है।

प्रस्तुत श्लोक में **श्रितगणसम्प्रहर्षिणी** आदि वाक्य और उसके एक पद **पृथुलहरी** के पार्वती और गंगा के पक्ष में भिन्न-भिन्न अर्थ निकलते हैं।

प्रहर्षिणी छन्द –

जिसके प्रथम तीन तथा अष्टम, दशम, द्वादश (१२वें) और त्रयोदश (१३वें) वर्ण गुरु हों और तीसरे तथा दसवें पर विराम हो, वह प्रहर्षिणी छन्द होता है। यह १३ अक्षरों का छन्द है।

ऽ ऽ । ऽ । । । । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ
लोका ! इहास्त इति रत्नसमुच्चयोऽयं

ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ
स्तम्भोऽथ चित्रकृदुमाऽऽयतनं ह्रदोऽन्धुः।

ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ
सान्द्रं वसन्ततिलकं च सुचारु गोष्ठ-

ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ
माङ्गल्यकोदवनमित्यमुमाश्रयध्वम्।।३३।।

अन्वय:

लोकाः ! अयम् इह रत्न समुच्चयः आस्ते। चित्रकृत् स्तम्भः अथ (च) (चित्रकृत) उमा आयतनं, ह्रदः, अन्धुः, सान्द्रं सुचारु वसन्त तिलकं गोष्ठं, माङ्गल्यकोदं वनम् इति। (अतः) अमुं आश्रयध्वम्।

शब्दार्थ –

चित्रकृत् – आश्चर्यकारी, **अन्धुः** – कूप,
वसन्त-तिलकं – वसन्त ऋतु का तिलक,
गोष्ठमांगल्यकोद – गोठ और मांगलोद गाँव।

संस्कृत टीका –

॥लोका इति॥ हे लोका जनाः ! इति वक्ष्यमाणप्रकारेण, अयम् एषः, इह लोक इति शेषः। रत्नानां समुच्चयः समुदायः, आस्ते तिष्ठति वर्तत इति भावः। तं च पृथक्पृथक् कथयति–चित्रकृदिति सर्वेषामेव रत्नत्वसूचकानां शब्दानां विशेषणम्। चित्रकृत् निराधारत्वेन आश्चर्यकारी, स्तम्भः दधिमथीमंदिरस्तम्भः। तत्र ह्येकोऽनाधारस्तम्भो देवीप्रभावाद्वर्त्तते। अथ च चित्रकृत् पृथ्वीविदारणपूर्वकनिस्सारितस्वप्रतिमितित्वेन आश्चर्यकारिणी, उमा देवी दधिमथीति यावत्। चित्रकृत् पृथ्वीनिर्गतमुख्यविभागत्वेनाश्चर्यकारि आयतनं मंदिरं; चित्रकृत् सदैवोपकण्ठजलत्वेनाश्चर्यकारी, ह्रदो नदः, चित्रकृत् मरुकूपतयाऽपि सदैवासन्नजलत्वेनाश्चर्यकारी, अन्धुः कूपः; च पुनः, चित्रकृत् सदैव सुपवित्रदर्भशालित्वेन विशेषतः फुल्लतया चाश्चर्यकारि, सान्द्रं वृक्षादिभिः स्निग्धं, सुचारु सुमनोहरं, वसन्तस्य पुष्पसमयस्य तिलकं तिलकभूतं, गोष्ठो 'गोठ' इति प्रसिद्धो ग्रामविशेषः, तथा मांगल्यकोदो[१] 'मांगळोद' इति प्रसिद्धो ग्रामविशेषः, तयोर्वनं काननम्। इत्येयं रत्नसमुच्चय इति पूर्वेण सम्बन्धः। इति। अतः कारणात्, अमुं पूर्वोक्तं रत्नसमुच्चयं, आश्रयध्वं भजध्वम्। एतानि सर्वाण्येव रत्नमयानि देवीप्रभावादाश्चर्यकारीणि दधिमथीमंदिरपार्श्वे वर्त्तन्त इति ज्ञेयमित्यर्थः॥

अत्रानेकेषामत्युत्कृष्टानां स्तम्भादीनामेकत्र निबन्धनात्समुच्चयालंकारः। तल्लक्षणं **'एकत्र यत्र वस्तूनामनेकेषां निबन्धनम्। अत्युत्कृष्टापकृष्टानां, तं वदन्ति समुच्चयम्॥'** इति॥

१. माङ्गल्यकं मङ्गलकारि उदकं जलं यत्र स तथाभूतः। संज्ञायामुदकस्योदादेशः।

अपि चात्र प्रथमद्वितीयचतुर्थाष्टमैकादशत्रयोदशचतुर्दशानां वर्णानां गुरुत्वात्, अष्टाभिः षड्भिश्च वर्णैर्विश्रामदर्शनाद् वसन्ततिलकं वृत्तम्। तल्लक्षणं तु **'आद्यं द्वितीयमपि चेद्गुरु तच्चतुर्थे, यत्राष्टमं च दशमान्त्यमुपान्त्यमन्त्यम्। अष्टाभिरिन्दुवदने ! विरतिश्च षड्भिः, कान्ते ! वसन्ततिलकं किल तं वदन्ति॥'** इति॥३३॥

भाषा टीका –

हे लोको ! इस लोक में यह रत्नों का समुदाय है, जैसे आश्चर्यकारी स्तम्भ,[२] (पृथ्वी को फाड़कर निकलने से) आश्चर्यकारिणी देवी (दधिमथी), (पृथ्वी से एक भाग के निकलने से) आश्चर्यकारी मन्दिर, (सदा ही पानी के समीप होने से) आश्चर्यकारी कुण्ड, (ग्रीष्म में भी पानी के समीप होने से) आश्चर्यकारी कूप, और (सदा पवित्र जल होने से और फुल्ल रहने से) आश्चर्यकारी, सघन वसन्त ऋतु का तिलकरूप गोठ-मांगळोद ग्रामों का बन ये रत्न हैं। इसलिए इन्हीं को सेवन करो॥३३॥

वसन्त-तिलकं –

वसन्त ऋतु का तिलक, **गोष्ठमांगल्यकोद** – गोठ और मांगलोद गाँव।

समुच्चय अलंकार –

जहाँ काव्य में अनेक उत्तम या निकृष्ट वस्तुओं का एक स्थान पर संग्रह कर दिया गया हो, उसे समुच्चय अलंकार कहते हैं।

यहाँ अनेक उत्तम आश्चर्यकारी खम्भे, मन्दिर, कुएँ, तालाब, वन और गाँव आदि का एक ही स्थान में ग्रन्थन होने से समुच्चय अलंकार है।

वसन्ततिलका छन्द –

जिसमें प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, अष्टम, एकादश (११वाँ), त्रयोदश (१३वाँ) और चतुर्दश (१४वाँ) वर्ण गुरु हों , वह वसन्ततिलका छन्द होता है। इसमें आठवें और छठे वर्णों पर विराम होता है। यह १४ अक्षरों का छन्द होता है।

२. देवी और मन्दिर के साथ होने से देवी (दधिमथी) के मन्दिर का ही स्तम्भ समझना।

ı ı ı ı ı ı ऽ ऽ ऽ ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ
अयि दधिमथि ! मिथ्याऽप्रस्तुतात्मप्रशंसाऽ-
ı ı ı ı ı ı ऽ ऽ ऽ ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ
रचि भुवि पतितैः श्रीमालिनी त्वद्विपक्षैः।
ı ı ı ı ı ı ऽ ऽ ऽ ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ
पतितमपि रजोऽत्राऽशुद्धिदेभ्यो हितेभ्यो
ı ı ı ı ı ı ऽ ऽ ऽ ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ
वरमुपकुरुते यच्छुद्धिकार्यं जनानाम् ।।३४।।

अन्वयः

अयि दधिमथि ! भुवि पतितैः त्वद् विपक्षैः अप्रस्तुता श्रीमालिनी आत्मप्रशंसा मिथ्या अरचि। हि अत्र भुवि पतितं अपि रजः अशुद्धिदेभ्यः तेभ्यः वरम्, यत् जनानां शुद्धिकार्यं उपकुरुते।

शब्दार्थ –

पतितैः – पापियों द्वारा, **अप्रस्तुता** – जो उनमें उपस्थित नहीं है अर्थात् जिस प्रशंसा के वे योग्य नहीं हैं, **अशुद्धिदेभ्यः** – अपवित्र बनाने वालों से, **रजः वरम्** – मिट्टी श्रेष्ठ है।

संस्कृत टीका –

।।अपीति।। अयिभो दधिमथि ! भुवि पृथिव्यां पतितैः, त्वद्विपक्षैः त्वद्विरोधिभिः, अप्रस्तुता न केनापि प्रसङ्गविषयीकृता, श्रीमालिनी शोभाधारिणी, आत्मप्रशंसा स्वस्तुतिः, मिथ्या मृषा, अरचि व्यधायि। न ते प्रशंसार्हा इति भावः। हि यतः, अत्र भुवि पतितमपि रजो धूलिः, अशुद्धिदेभ्यः पतिततयाऽशुद्धिकारिभ्यः, तेभ्यः त्वद्विपक्षेभ्यः, वरं श्रेष्ठं, त्वद्विपक्षापेक्षया रजोऽपि श्रेय इति भावः। यद् (रजः) जनानां लोकानां, शुद्धिकार्यम् उपकुरुते साधयति। हस्तादिशोधने रज उपयुज्यते लोकस्य। अत एव अशोधकापेक्षया शोधकं वरमिति भावः। इत्यर्थः।।

अत्र अप्रस्तुतस्याऽपि रजसः शुद्धिदत्वेन प्रशंसा कृताऽतोऽप्रस्तुतप्रशंसालंकारः। स चाऽस्मिन्वृत्ते 'अप्रस्तुतप्रशंसा' इति

पदाकलनाऽसंभवात् 'अप्रस्तुतात्मप्रशंसा' इति पदयोजनया सूचितः। 'अप्रस्तुतात्मनो वस्तुनः प्रशंसा' इत्यर्थकस्यापि तदुपयोगित्वात्। तल्लक्षणं तु **'प्रशंसा क्रियते यत्राऽप्रस्तुतस्याऽपि वस्तुनः। अप्रस्तुतप्रशंसा, तामाहुः कृतधियो यथा॥'** इति॥

अपि चात्र पूर्वेषां षण्णां वर्णानां दशमत्रयोदशयोश्च लघुत्वात्तदन्येषां च दीर्घत्वादष्टभिः सप्तभिश्च विश्रामामालिनीवृत्तम्। तल्लक्षणं **'प्रथममगुरुषट्कं विद्यते यत्र कान्ते !, तदनु च दशमं चेदक्षरं द्वादशान्त्यम्। गिरिभिरथ तुरङ्गैर्यत्र कान्ते ! विरामः सुकविजनमनोज्ञा मालिनी सा प्रसिद्धा॥'** इति॥३४॥

भाषा टीका –

हे दधिमथी ! पृथ्वी में पड़े हुए आपके वैरियों ने, किसी से भी नहीं की गई शोभावाली अपनी प्रशंसा झूँठ की। उन वैरियों से पृथ्वी में पड़ी हुई धूल भी अच्छी है क्योंकि वे तो अशुद्धि देते हैं, और वह धूलि लोगों के शुद्धि के लिए काम आती है॥३४॥

अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार –

जहाँ अप्रस्तुत (अविद्यमान) वस्तु की प्रशंसा की जाय, वहाँ अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार होता है।

यहाँ देवी के पावनत्व को स्मरण कराने के लिए मिट्टी की प्रशंसा की गई है जो यहाँ उपस्थित नहीं है। मिट्टी को उन पतितों से श्रेष्ठ कहा गया है जो नीचे होती हुई भी लोगों को शुद्धि कार्य (हाथ या बर्तन साफ करने के) में आती है जब कि पतित दूसरों को भी अशुद्ध बना देते हैं।

मालिनी छन्द –

मालिनी १५ अक्षरों का छन्द है। इसमें प्रथम छः अक्षर, दसवें और तेरहवें अक्षर लघु होते हैं। इसमें आठ और सात वर्णों पर विराम होता है।

। । । । । । ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ । । ऽ । ऽ
त्वमु दधिमथि ! स्वौजा एकावलीव लसत्तनु-
। । । । । ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ । । ऽ । ऽ
स्तनुरपि महाभूषा भूषा अपि स्फुटमौक्तिकाः।
। । । । । ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ । । ऽ । ऽ
अथ परिहरन्त्येता मुक्ता मनो हरिणीक्षणे !
। । । । । ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ । । ऽ । ऽ
नहि भगवति ! त्वां मूढोऽहं प्रकीर्तयितुं क्षमः ।।३५।।

अन्वयः

दधिमथि ! त्वं उ स्व ओजा एकावली इव लसत् तनु (असि), तनुः अपि महाभूषा, भूषा अपि स्फुटमौक्तिकाः (सन्ति), अथ एता मुक्ता मनो परिहरन्ति। हरिणीक्षणे ! भगवति ! मूढः अहं त्वां प्रकीर्तयितुं नहि क्षमः।

शब्दार्थ –

एकावली – एक लड़ की मोती आदि की माला,

महाभूषा – महान भूषणों वाली।

संस्कृत टीका –

॥त्वमिति॥ हे दधिमथि ! उ इति पादपूरणे। सुष्ठु शोभनम् ओजः तेजो यस्याः सा त्वं, एकावलीव हारविशेष इव लसत्तनुर्विलसन्मूर्तिः असीति शेषः। तनुः मूर्तिरपि, महत्यो भूषा अलंकारा यत्र सा तथाभूता, भूषणान्यपि, स्फुटानि मौक्तिकानि मुक्ताफलानि यासु तास्तथोक्ताः। अथ पुनः एता मुक्ता मौक्तिकानि मनो हृदयं, हरन्ति आकर्षन्ति। (अत एव) हे हरिणीक्षणे ! मृगीनेत्रे ! भगवति ! देवि !, मूढो मूर्खोऽहं, त्वां प्रकीर्त्तयितुं वर्णयितुं नहि नो, क्षमः समर्थः। अस्मीतिशेषः। इत्यर्थः॥

अत्र पूर्वपूर्वार्थानां तनुभूषादिरूपाणां वैशिष्ट्ये तत्पराणां महाभूषा–स्फुटमौक्तिकादिरूपाणामर्थानामुत्तरोत्तरं विरचनास्तीत्यत एकावल्यलंकारः। तल्लक्षणं तु **'पूर्वपूर्वार्थवैशिष्ट्य–निष्ठानामुत्तरोत्तरम्।**

अर्थानां या विरचना, बुधैरेकावली मता॥' इति॥

अथ चात्र पूर्वेषां पञ्चानाम् एकादश–त्रयोदश–चतुर्दश–षोडशानां च वर्णानां लघुत्वादितरेषां च गुरुत्वात् षड्भिश्चतुर्भि: सप्तभिश्च विश्रामाद् हरिणीवृत्तम्। तल्लक्षणं **'सुमुखि ! लघव: पञ्च प्राच्यास्ततो दशमान्तिमं, तदनु ललितालापे ! वर्णौ यदि त्रिचतुर्दशौ। प्रभवति पुनर्यत्रोपान्त्य: स्फुरत्कनकप्रभे ! यतिरपि रसैर्वेदैरश्वै: स्मृता हरिणीति सा॥'** इति॥३५॥

भाषा टीका –

हे दधिमथी ! अच्छे तेजवाली आप एकावलीहार के जैसे शोभनेवाली मूर्ति को धारण करती हो। और मूर्ति भी बड़े-बड़े भूषणवाली है, भूषण भी प्रकट मोतीवाले हैं और ये मोती चित्त को हरण करते हैं; इसलिए हे हरिणी के जैसे चंचलनेत्रवाली ! देवि ! मैं मूर्ख आपका वर्णन नहीं कर सकता॥३५॥

एकावली अलंकार –

जहाँ पूर्व पूर्व कहे हुए उत्कृष्ट पदार्थों की उत्तरोत्तर विशेषता बताते हुए रचना होती जाए वहाँ एकावली अलंकार होता है।

यहाँ हार धारण करने वाली उत्कृष्ट मूर्ति का वर्णन है, उससे भी उत्कृष्ट बड़े-बड़े आभूषण, आभूषणों में भी उत्कृष्ट मोतियों का वर्णन है, अत: यहाँ एकावली अलंकार है।

हरिणी छन्द –

हरिणी १७ अक्षरों का छन्द होता है। इसमें प्रथम पाँच तथा ११, १३, १४ और १६वें अक्षर लघु होते हैं। ६, ४, और ७ वर्णो पर विराम होते हैं।

। ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । । ऽ ऽ । । । । ऽ
उमे ! चैत्यं दृष्ट्वा क इदमनुमानं न कुरुते
। ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । । । ऽ ऽ ऽ । । ऽ
निराधार: स्तम्भोऽत्र हि शिखरिणीवोच्चशिखरे ।
। ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । । । ऽ ऽ । । । ऽ
विभातीतश्चैत्यं स्वयमिदमभूद्भूमितलतो
। ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । । ऽ ऽ । । । ऽ
न चेदीदृक्षं क: प्रभवति नृलोके रचयितुम् ॥३६॥

अन्वय:

उमे ! क: (तव) चैत्यं दृष्ट्वा इदं अनुमानं न कुरुते। हि शिखरिणी इव उच्चशिखरे अत्र निराधार: स्तम्भ: विभाति, इत: इदं चैत्यं स्वयं भूमितलत: अभूत्, न चेत् नृलोके ईदृक्षं रचयितुं क: प्रभवति।

शब्दार्थ –

चैत्यं – मन्दिर को, **शिखरिणी** – पर्वत

संस्कृत टीका –

॥उमे इति॥ हे उमे ! दधिमथि ! क: (पुरुष:) चैत्यं मन्दिरं तवेति शेष:। दृष्ट्वा विलोक्य, इदं वक्ष्यमाणम्, अनुमानम् अनुमितिं न कुरुते न करोति ? अपि तु सर्व एव करोतीत्यर्थ:। तत्किमित्याह–हि यत:, शिखरिणीव पर्वते इव, उच्चशिखरे उन्नतशिखरे, अत्र मन्दिरे, निराधार आश्रयरहित:, स्तम्भ:, विभाति शोभते, इत: अत: कारणात्, इदं चैत्यं मन्दिरं, स्वयम् आत्मना, भूमितलत: पृथ्वीतलात्, अभूत् उदपद्यत। दैव्याशक्त्येति भाव:। न चेत् अन्यथा स्वयमुत्पत्तिकल्पनाऽभावे, नृलोके मर्त्यलोके ईदृक्षम् अपूर्वस्तम्भादिशोभितमेतादृशे, रचयितुं निर्मातुं, क: (पुरुष:), प्रभवति शक्नोति ? न कोऽपीति भाव:। इत्यर्थ:॥

अत्र प्रत्यक्षात् निराधारस्तम्भदर्शनरूपाल्लिङ्गाद् भूतकालवर्तिनो लिङ्गिस्थानीयस्य स्वयमुत्पन्नमन्दिरस्य ज्ञानं भवत्यतोऽनुमानाऽलंकार:।

तल्लक्षणं तु **'प्रत्यक्षाल्लिङ्गतो यत्र, कालत्रितयवर्तिनः। लिङ्गिनो भवति ज्ञान-मनुमानं तदुच्यते॥'** इति॥

किञ्चात्र पूर्वस्य षष्ठवर्णोत्तरवर्त्तिनां पञ्चानाम् उपान्त्यानां च त्रयाणां वर्णानां लघुत्वात्तदन्येषां च गुरुत्वात् षड्भिरेकादशभिश्च विश्रामदर्शनाच्छिखरिणीवृत्तम्। तल्लक्षणं **'यदा पूर्वो ह्रस्वः कमलनयने ! षष्ठकपरास्ततो वर्णाः पञ्च प्रकृतिसुकुमाराङ्गि ! लघवः! त्रयोऽन्ये चोपान्त्याः सुतनु ! जघनाभोगसुभगे !, रसै रुद्रैर्यस्यां भवति विरतिः सा शिखरिणी॥'** इति॥३६॥

भाषा टीका –

हे देवि ! आपके इस मन्दिर को देखकर कौन इस अनुमान को नहीं करता ? अर्थात् सब कोई करता है। जैसे – पर्वत से ऊँचे शिखरवाले इस मन्दिर में आधार रहित खम्भे हैं, इसलिए यह मन्दिर खुद पृथ्वी से उत्पन्न हुआ है, यदि ऐसा न हो तो मर्त्यलोक में कौन ऐसे मन्दिर को बना सकता है। अर्थात् कोई नहीं, इसलिए यह दैवीशक्ति से पृथ्वी से खुद ही निकला है॥३६॥

अनुमान अलंकार –

जहाँ प्रत्यक्ष कारण से तीनों कालों के पहचानवाले (लिंगी) का अनुमान हो जाय, वहाँ अनुमान अलंकार होता है। (जैसे धुएँ से आग का अनुमान) यहाँ निराधार स्तम्भ रूप कारण से मन्दिर के स्वयं उत्पन्न होने का अनुमान हो जाता है।

शिखरिणी छन्द –

शिखरिणी १७ अक्षरों का छन्द होता है। इसमें पहला वर्ण लघु होता है। छः के बाद पाँच वर्ण (७, ८, ९, १०, ११वें) भी लघु होते हैं। अन्त के पूर्व के तीन वर्ण (१४, १५, १६वें) भी लघु होते हैं। ६ठे और ११वें पर विराम होता है।

। ऽ । । । । ऽ । ऽ । । । ऽ । ऽ ऽ । ऽ
सुमौल्युपरिसंख्यया विरहिता यदीयाः कचा
। ऽ । । । ऽ । ऽ । । । ऽ । ऽ ऽ । ऽ
विभान्ति मलिना भृशं न खलु चित्तवृत्तिः परम्।
। ऽ । । । ऽ । ऽ । । । ऽ । ऽ ऽ । ऽ
सुचारुकुटिला समुल्लसति च स्फुटं भ्रूद्वयी
। ऽ । । । ऽ । ऽ । । । ऽ । ऽ ऽ । ऽ
न तु प्रकृतिरस्तु सा दधिमथी सुपृथ्वीहिता॥३७॥

अन्वयः

यदीयाः सुमौलि उपरि संख्यया विरहिता मलिनाः कचाः भृशं विभान्ति। परं खलु चित्तवृत्तिः (मलिनाः) न (अस्ति), भ्रूद्वयी सुचारु स्फुटं च समुल्लति। न तु प्रकृतिः कुटिला (समुल्लसति), सा सुपृथ्वी दधिमथि (मम) ईहिता अस्तु।

शब्दार्थ –

संख्यया विरहिता – असंख्य, **मलिनाः** – काले, **भ्रूद्वयी** – दोनों भौंहें, **सुपृथ्वी** – महिमामयी।

संस्कृत टीका –

॥स्विति॥ सुष्ठु शोभना मौलिः शिरः तस्योपरि, मम्तकोपरीति भावः। संख्यया गणनया विरहिता हीना असंख्याता इत्यर्थः। कचाः केशा मलिनाः श्यामा भृशम् अत्यर्थं विभान्ति शोभन्ते, परं परन्तु, खलु निश्चयेन चित्तवृत्तिर्मनोवृत्तिः, न। मनोवृत्तिर्मलिना नास्ति, किन्तु, निर्मलैवेति भावः। च पुनः, भ्रूद्वयी भ्रूयुगं, सुचारु सुमनोहरं यथास्यात्तथा स्फुटं प्रकटं, समुल्लसति विराजते। न तु प्रकृतिः स्वभावः, कुटिला वक्रा, समुल्लसति। स्वभावस्तु सरल एवेति तात्पर्यम्। सुपृथ्वी पूज्यतया सुमहती सा दधिमथी ईहिता इष्टा, अस्तु भवतु। ममेति शेषः। इत्यर्थः॥

अत्र केश–भ्रूयुगयोर्मालिन्यकौटिल्ये चित्तवृत्ति-प्रकृत्योर्निवृत्त्यै प्रतिपादिते अतः परिसंख्यालंकारः। तल्लक्षणं **'यत्र साधारणं किञ्चि-**

देकत्र प्रतिपाद्यते। अन्यत्र तन्निवृत्त्यै सा, परिसंख्योच्यते यथा॥' इति॥

अथ चात्र द्वितीयषष्ठाष्टमद्वादशचतुर्दशपञ्चदशांतिमवर्णानां गुरुत्वात् तदन्येषां च लघुत्वादष्टाभिर्नवभिश्च विश्रामसम्भवात् पृथ्वीवृत्तम्। तल्लक्षणं तु **'द्वितीयमलिकुन्तले ! गुरु षडष्टमं द्वादशं, चतुर्दशमथ प्रिये ! गुरुगभीरनाभिह्रदे !। सपञ्चदशमंतिमं तदनु यत्र कान्ते ! यतिर्गिरीन्द्रफणभृत्कुलैर्भवति सुभ्रु ! पृथ्वीति सा॥'** इति॥३७॥

भाषा टीका –

जिसके शिर पर असंख्य केश मलिन हैं, परन्तु चित्तवृत्ति मलिन नहीं है। अर्थात् चित्तवृत्ति तो निर्मल ही है। और भौंह कुटिल हैं, परन्तु स्वभाव कुटिल नहीं है। अर्थात् स्वभाव तो सरल है। वह पूज्या देवी दधिमथी (हमारी) इष्ट हों॥३७॥

परिसंख्या अलंकार –

जहाँ कोई साधारण वस्तु एक जगह तो होती है किन्तु दूसरे स्थान पर उसकी निवृत्ति हो जाती है उसे परिसंख्या अलंकार कहते हैं।

यहाँ केश की मलिनता और भौंहों की कुटिलता है किन्तु चित्त की मलिनता नहीं है और भौंहें स्वभाववश टेढ़ी हैं ऐसा कहकर उनका परिहार कर दिया गया है।

पृथ्वी छन्द –

यह १७ अक्षरों का छन्द होता है। इसमें दूसरा, छठा, आठवाँ, बारहवाँ, चौदहवाँ, पन्द्रहवाँ तथा (अन्त्य) सत्रहवाँ वर्ण गुरु होते हैं। आठ और नव पर विराम होते हैं।

ऽऽ ऽ ऽ ।।। ।।ऽ ऽ । ऽऽ । ऽऽ
एतत्प्रश्नोत्तरमपि, सखे ! किं न वक्तुं समर्थोऽ-

ऽ ऽ ऽ ऽ।।।।।ऽ ऽ । ऽ ऽ।ऽ ऽ
मन्दाक्रान्तारिरुपधरते किं शिवा, कीदृशी च।

ऽऽ ऽ ऽ।। ।। ।ऽ ऽ।ऽ ऽ ।ऽ ऽ
कीदृक् चाध्यायत इह, ततः क्षीयते किं, किमूढा,

ऽऽ ऽऽ ।। ।। ।ऽ ऽ।ऽऽ ।ऽ ऽ
कीदृक् चासौ विलसति सदा सिंहराजाधिरूढा॥३८॥

अन्वयः

सखे ! किं एतत् प्रश्नोत्तरं अपि न वक्तुं समर्थः (असि), अमन्दा आक्रान्तारिः शिवा किं उपधरते ? (सा) च कीदृशी ? इह च कीदृक् आध्यायते ? ततः किं क्षीयते ? च असौ किं ऊढा? च सदा कीदृक् विलसति ? (उत्तरं) सिंहराजाधिरूढा।

शब्दार्थ –

अमन्दा आक्रान्तारिः – शत्रु पर तेज आक्रमण करने वाली, **उपधरते** – धारण करती है, **आध्यायते** – ध्यान की जाती है, **किमूढा** – किसे व्याही गई।

संस्कृत टीका –

॥एतदिति॥ हे सखे मित्र ! किं त्वम् एतेषां वक्ष्यमाणानां प्रश्नानामुत्तरं प्रतिवचनं वक्तुं न समर्थः ? न शक्तोऽसीति भावः। के ते प्रश्ना इत्याह–अमन्दा उत्कृष्टाः आक्रान्तः अधःपतितोऽरिः शत्रुर्यया सा तथोक्ता, शिवा देवी, किम् उपधरते गृह्णाति ? च पुनः कीदृशी कथम्भूता सती, उपधरते तदिति योज्यम्। च पुनः, इह जगति, कीदृक् कथम्भूता (सा) आध्यायते ध्यानविषयीक्रियते ? ततो ध्यानाच्च किं क्षीयते नश्यति ? च असौ एषा देवी किमूढा केन परिणीता ? कीदृक् कथंभूता च सदा नित्यं विलसति शोभते ? इत्यस्योत्तरमाह–सिंहराजाधिरूढा। सिंहराजो महासिंहस्तम-धिरूढाऽध्यासितेत्यर्थः। इदमेवोत्तरं पूर्वप्रश्नोत्तररूप

सूचितम्। तच्च असिं, हरा, अजा, आधिः, उ-ऊढा इति छेद्यम्। तथा हि–आक्रान्तरिर्देवी किं धरतीति प्रश्ने, असिं खड्गं धरतीत्युत्तरम्। कीदृशी सती तद् धरतीति प्रश्ने, हरा हरतीति हरा तथाभूता सतीत्युत्तरम्। खड्गं हि गृहीत्वा शत्रुं तच्छिरो वा हरत्येव। कीदृक् च साऽऽध्यायते ? इति प्रश्ने, अजा अनुत्पत्तिरूपा, अजस्य शिवस्य स्त्री अजा एतादृशी वा ध्यायत इत्युत्तरम्। ततो ध्यानात्किं क्षीयते ? इति प्रश्ने, आधिर्मानसी व्यथा क्षीयत इत्युत्तरम्। किमूढा केन ऊढा परिणीता ? सा किमूढा इति प्रश्ने, ऊढा उः शिवः तेनोढा परिणीता इत्युत्तरम्। इत्यर्थः॥

अत्र प्रश्नानां प्राग्गूढत्वेन ततश्च व्यक्तत्वेनोत्तरदर्शनात्प्रश्नोत्तरालंकारः। तल्लक्षणं तु **'प्रश्ने यत्रोत्तरं व्यक्तं, गूढं वाप्यथवोभयम्। प्रश्नोत्तरम्'** इति॥

अथ चात्र आद्यानां चतुर्णां दशमैकादशत्रयोदशचतुर्दशषोडशसप्तदशानां वर्णानां गुरुत्वात्तदन्येषां च लघुत्वात् चतुर्भिः षड्भिः सप्तभिश्च विश्रामदर्शनाद् मन्दाक्रान्तावृत्तम्। तल्लक्षणं तु **'चत्वारः प्राक् सुतनु ! गुरवो द्वौ दशैकादशौ चे–न्मुग्धे ! वर्णौ तदनु कुमुदामोदिनी ! द्वादशान्त्यौ। तद्वच्चान्त्यौ युगरसहयैर्यत्र कान्ते ! विरामो, मन्दाक्रान्तां प्रवरकवयस्तन्वि ! तां संगिरन्ते॥'** इति॥३८॥

भाषा टीका –

हे मित्र ! क्या इन प्रश्नों का भी उत्तर नहीं दे सकता ? जैसे – प्रश्न (१) प्रबला देवी शत्रु को दबा कर क्या ग्रहण करती है ? (२) और उस समय वह कैसी होती है ? (३) और जगत् में कैसी ध्यान की जाती है ? (४) और उस ध्यान से क्या क्षीण होता है ? (५) और वह देवी किससे विवाहिता हुई ? (६) और सदा वह कैसी शोभित रहती है ? इस अन्तिम (६) प्रश्न का उत्तर स्पष्ट कह दिया कि 'सिंहराजाधिरूढा' सिंहराज पर बैठी हुई शोभित रहती है॥ इस ही पद में पूर्वोक्त सब प्रश्नों के उत्तर गूढ (छुपे रहे) हैं। जैसे इस ही पद के टुकड़ों से क्रम से समझो–(१) असिं[१] - तलवार को। (२) हरा - हरण

१. असि शब्द का अकार श्लोक में इसके पिछाड़ी आकार होने से चला गया है।

करनेवाली। (३) अजा - नहीं उत्पन्न हुई वा शिवस्त्रीरूप। (४) आधिः - मन की पीड़ा। (५) उ-ऊढा - महादेव से विवाहिता। छठे प्रश्न का उत्तर इन पदों का समुदायरूप कह ही दिया॥३८॥

प्रश्नोत्तर अलंकार –

जिस रचना में प्रश्न किये जाने पर उसका उत्तर स्पष्ट अथवा अस्पष्ट हो या दोनों रूपों में हो उसे प्रश्नोत्तर अलंकार कहते हैं।

इस श्लोक में देवी के प्रति छः प्रश्न किये गये हैं। इनके उत्तर पहले तो गूढ़ हैं किन्तु बाद में ऽ (अ) 'सिंहराजाधिरूढा' इस पद का विच्छेद करने पर प्राप्त होनेवाले छः शब्दों से छः उत्तर स्पष्ट रूप से निकल आते हैं। पदच्छेद इस प्रकार है – असिं, हरा, अजा, आधिः, उ ऊढा तथा समस्त पद 'ऽसिंहराजाधिरूढा'। इसे प्रश्न और उत्तर के रूप में देखा जा सकता है :

१. देवी शत्रु को दबाकर क्या लेती है ? (असिं) तलवार
२. उस समय वह कैसी होती है ? (हरा) प्राण हरनेवाली
३. संसार में किस रूप में ध्यान की जाती है ? (अजा) अजन्मा शिव की स्त्री के रूप में
४. ध्यान द्वारा क्या क्षीण होता है ? (आधिः) मानसिक दुःख
५. वह किससे ब्याही गई है ? (उ ऊढा) उ अर्थात् शिव से
६. वह किस प्रकार शोभित होती है ? (सिंहराजाधिरूढा) सिंहराज पर बैठी हुई।

अतः पहले गूढ़ और बाद में स्पष्ट उत्तर दिखाई देने से यह प्रश्नोत्तर अलंकार है।

मन्दाक्रान्ता छन्द –

जिसमें १ से लेकर ४ तक तथा १०, ११, १३, १४, १६, १७वें वर्ण गुरु हों, शेष लघु हों तथा ४, ६ और ७ पर विराम हो वह मन्दाक्रान्ता छन्द होता है।

ऽ ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । । । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ

आवासं करणीयमम्ब ! कुरु मे हृन्मन्दिरे सुन्दरे

ऽ ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । । । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ

तत्सक्तं च तमस्तमालमलिनं द्राग्दीपिकावद्धर।

ऽ ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । । । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ

त्वं चान्द्रीन्द्रभुवीह पादकटकाद्याभूषितायां गुहो–

ऽ ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । । । ऽ ऽ ऽ । । ऽ । ऽ

पेतायां सदयोदयो भज मन: शार्दूल ! विक्रीडितम् ॥३९॥

अन्वय:

अम्ब ! सुन्दरे मे हृन्मन्दिरे करणीयं आवासं कुरु। तत् सक्तं तमालमलिनं तमं च दीपिकावत् त्वं द्राक् हर। मन: शार्दूल ! सदयोदय: पादकटकादिभि: आभूषितायां गुहोपेतायां च इह अद्रीन्द्र भुवि विक्रीडितं भज।

शब्दार्थ –

तमालमलिनं तमं – नीले रंग के तमाल के पेड़ की तरह अन्धकार को, **द्राक्** – शीघ्र, **मन:शार्दूल!** – हे मन रूपी सिंह, **सदयोदय:** – उत्तम भाग्योदय के साथ अथवा दयादि गुणों के साथ, **पादकटकादिभि:** – (देवी पक्ष में) पैर के कड़ों से (पर्वत पक्ष में) कंकड़ों से, **गुहान्वितायां** – (देवी पक्ष में) गुह अर्थात् पुत्र स्कन्द से युक्त (पर्वत पक्ष में) गुफाओं से युक्त, **अद्रीन्द्रभुवि** – (देवी पक्ष में) पर्वतराज हिमालय से उत्पन्न देवी पार्वती में (पर्वत पक्ष में) पर्वतराज हिमालय की भूमि में, **विक्रीडितं भज** – (सिंह की तरह) क्रीडा करते हुए विचरण करो।

संस्कृत टीका –

॥आवासमिति॥ हे अम्ब ! मात: ! सुन्दरे मनोहरे, मे मम, हृन्मन्दिरे मनोरूपगृहे, करणीयं कर्त्तुं योग्यम्, आवासं निवासं, कुरु विधेहि। च पुन:, तत्र हृन्मन्दिरे, सक्तं वर्त्तमानं, तमालमलिनं तमालतरुनीलं

तमोऽन्धकारं, दीपिकावद् दीववत्। त्वमित्युन्नेयम्। द्राग्द्रुतं, हर नाशय। च पुन:, हे मन:शार्दूल ! चित्तरूपव्याघ्र !, सन् विद्यमान: अयस्य शुभावहविधे: 'अय: शुभावही विधि:' इत्यमर:। उदयो यस्य स तथाभूत:। सद्भाग्योदय इत्यर्थ:। यद्वा दयोदय: दयागुणाविर्भाव: तेन सह विद्यमानस्तथाभूत:। त्वं पादकटकादिभिश्चरणाभरणविशेषप्रमुखै: (भूषणै:), अन्यत्र पादा: प्रत्यन्तपर्वता:, कटक: अद्रिनितम्ब:, तदादिभि: (पर्वतोद्देशै:) आभूषितायाम् अलंकृतायां, गुह: स्कन्द:तेन, गुहाभिश्चोपेतायाम् अन्वितायाम्; इह अस्याम्, अद्रीन्द्रभुवि–अद्रीन्द्र: पर्वतपतिर्हिमाचल इति यावत्। तस्माद् भवतीति अद्रीन्द्रभूर्गिरिजा देवीति यावत्। तस्याम्, अन्यत्र अद्रीन्द्रो महापर्वत: तस्य भूर्भूमिस्तस्यां; विक्रीडितं क्रीडां, भज सेवस्य कुर्विति भाव:। यथा हि व्याघ्र: प्रत्यन्तपर्वतनितम्बादियुक्तायां गुहाविशिष्टायां च पर्वतभूम्यां क्रीडां करोति, तथैव हे मन: ! त्वमपि एतादृश्यां देव्यां (देवीविषये) क्रीड तन्निरतं भवेत्यर्थ:॥

अत्र तमसस्तमालेन सह, देव्याश्च दीपिकया सह सादृश्यकरणादुपमा ? हृदये गृहारोपाद् मनसि च शार्दूलारोपाद्रूपकम् २। 'अद्रीन्द्रभू' इत्यादि पदानां च द्व्यर्थतया श्लेष: ३। देवीकृतमनोनिवासेन मन:कृततद्विषयक्रीडनेन अतत्परत्वेन 'देव्यां मनोभक्तिर्भवतु' इति विवक्षितस्य प्रतीते: पर्यायोक्ति: ४। 'दयोदयो' इति द्विरावृत्त्या यमकम् ५। 'मन्दिरे सुन्दरे' इत्यादिरूपतयाऽनुप्रास: ६। 'संकर' इति पदेन संकरालंकारस्य, 'शार्दूलविक्रीडितम्' इति पदेन च तन्नामकवृत्तस्य युक्त्या सूचनेनाश्चर्यकरणाच्चित्रं चालंकार: ७। इत्येतेषां पूर्वोक्तानामलंकाराणां संसर्गात् संकरालंकार:। तल्लक्षणं **'तथोक्तानां, संसर्ग: संकरं विदु:॥'** इति॥

अपि चात्राद्यानां त्रयाणां षष्ठाष्टमद्वादशत्रयोदशचतुर्दशषोडश-सप्तदशान्तिमानां गुरुत्वात्तदन्येषां च लघुत्वाद्, द्वादशभि: सप्तभिश्चा-क्षरैर्विश्रामदर्शनाच्छार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। तल्लक्षणं तु **'आद्यं यत्र गुरुत्रयं प्रियतमे ! षष्ठं ततश्चाष्टमं, सन्त्येकादशतस्त्रयन्तदनु**

चेदष्टादशाद्यान्तिमाः। मार्तण्डैर्मुनिभिश्च यत्र विरतिः पूर्णेन्दु बिम्बानने ! तद्वृत्तं प्रवदन्ति काव्यरसिकाः शार्दूलविक्रीडितम्॥' इति॥

भाषा टीका –

हे देवी ! तू, सुन्दर निवास करने के योग्य मेरे हृदयरूपी गृह में निवास कर। और दीपिका के जैसी तू, उस हृदय-गृह में भरे हुए तम जैसे मलिन अन्धकार को दूर कर। हे मनरूप व्याघ्र ! अच्छे भाग्यवाला भी, पादकटकादि[1] से भूषित और गुहान्वित[2] देवीरूप पर्वत की भूमि में क्रीडा कर अर्थात् मेरा मन देवी में लीन रहे ॥३९॥

संकर अलंकार –

जहाँ कई अलंकार एक साथ आये हों, उसे संकर अलंकार कहते हैं।

इस एक ही श्लोक में सात प्रकार के अलंकार एक साथ आये हैं। १. अन्धकार का तमाल के साथ और देवी का दीप के साथ सादृश्य होने से **उपमा**। २. हृदय पर गृह का और मन पर सिंह का आरोप होने से **रूपक**। ३. 'अद्रीन्द्रभ्' 'पादकटकादि' और 'गुहान्विता' पदों के दो अर्थ होने से **श्लेष**। ४. देवी का मन में निवास करने और मन का देवी विषयक क्रीडा करने से कथन के पर्याय (अन्य वचन) से विवक्षित देवी की भक्ति की प्रतीति होने से **पर्यायोक्ति**। ५. 'दयोदयो' में दयो की दो बार आवृत्ति होने से **यमक**। ६. 'मन्दिरे सुन्दरे' में वर्णों के समान श्रवण से **अनुप्रास** और ७. 'शार्दूलविक्रीडितम्' पद से उस नाम के छन्द का युक्ति द्वारा सूचित करने से आश्चर्य के कारण **चित्र** अलंकार।

---

१. देवी-पक्ष में चरण का कटक भूषण आदि से भूषित। और पर्वतभूमि पाद-पर्वत का टुकड़ा, कटक नितम्बभाग आदि से भूषित।

२. देवी-पक्ष में कार्त्तिक से युक्त। और पर्वत-भूमि के पक्ष में गुफाओं से युक्त।

शार्दूलविक्रीडित छन्द –

यह १९ अक्षरों का छन्द होता है। इसमें प्रथम तीन, ६, ८, १२, १३, १४, १६, १७ तथा अन्तिम (१९वाँ) वर्ण गुरु होते हैं और १२ तथा ७ पर विराम होता है।

अधुना समाप्तेष्वलंकारेषु स्रग्धरावृत्तमुदाजिहीर्षुः कविरचनास्वरूपनिरूपरीत्या स्तवमुपसंहरति –

ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । । । । । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ
अर्थोत्कर्षप्रपूर्णा ललितपदगतिः संस्फुरच्चारुवृत्ताऽ-
ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । । । । । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ
लंकारालंकृता सद्गुणगणगुणिता सद्रसा दोषहीना।
ऽऽऽऽ । ऽ ऽ । । । । । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ
सद्वर्णस्रग्धरा सा कविवररचनेवोल्लसत्साधुरीति-
ऽ ऽऽऽ । ऽ ऽ । । । । । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ
र्नित्यानन्दप्रदात्री दिशतु दधिमथी भक्तिमद्भ्यः प्रमोदम्॥४०॥

अन्वयः

अर्थोत्कर्षप्रपूर्णा ललितपदगतिः संस्फुरत्, चारुवृत्ता अलंकारालंकृता सद् गुणगणगुणिता सद् रसाः दोषहीना सद् वर्ण स्रक् धरा उल्लसत् साधुरीतिः नित्यानन्दप्रदात्री कविवर रचना इव दधिमथी भक्तिमद्भ्यः प्रमोदं दिशतु।

संस्कृत टीका –

॥अर्थेति॥ अर्थानां प्रयोजनानाम् अभिधेयानां चोत्कर्षेण प्रपूर्णः ललिता सविलासा पदयोश्चरणयोः गतिर्गमनं यस्याः सा तथाभूता, अन्य ललिता सुमधुरा पदानां सुप्तिङन्तानां गतिर्न्यासो यत्र सा, संस्फुरन्ति शोभमाना चारूणि मनोहराणि वृत्तानि चरित्राणि यस्याः सा तथोक्ता, अन्यत्र संस्फुरणिचारूणि वृत्तानि छन्दांसि यत्र सा तथोक्ता, अलंकारैः कटककुण्डलादि उपमादिभिश्च अलंकृता भूषिता, सन्तः प्रशस्ता ये गुणाः सौन्दर्यादयः प्रसादादयश्च तेषां गणः समूहस्तेन गुणिता परिपूर्णा, सति

सत्ये रसो रागो यस्या सा तथोक्ता साधुरसविशिष्टा वा, अन्यत्र सन्तो विद्यमाना रसा: शृङ्गारादयो यत्र सा, दोषा: शरीरदूषणानि तैर्हीना रहिता, अन्यत्र दोषा: श्रुतिकट्वादयस्तैर्हीना, सद्वर्णा मनोहरशुक्लादिगुणवती या स्रग् माला तस्या धरा धारिका, शोभनमालाधारिणीति भाव:। अन्यत्र मनोहराक्षररूपमालाधारिणी, शोभमाना साध्वी शोभना रीति: स्वभावो यस्या: सा तथाभूता, अन्यत्र उल्लसन्त्य: साध्व्यो रीतय: वैदर्भ्यादयो यत्र सा, नित्योऽविनश्वरो य आनन्दो मोक्षस्तं ददात्येवंशीला, अन्यत्राऽपि स एवार्थ:। कविरचनाऽपि 'भुक्तिं मुक्तिं च विंदति' इत्यादि चतुर्वर्गफलप्राप्तिप्रमापकप्रमाणैर्मोक्षदायिनी भवत्येव। कविवराणां महाकवितॄणां रचना भणितिरिव, दधिमथि देवी भक्तिमद्भ्यो भक्तेभ्य: प्रमोदं हर्षं दिशतु ददातु। अत्र 'नित्यानन्द' इति पदेन स्वकीयं नामापि ग्रन्थकारेण सूचितम्। अन्ते च मङ्गलसूचकं प्रमोदपदं प्रदर्शितम्। इत्यर्थ:।।

अत्र वाग्भटालंकारे चत्वारिंशस्याऽलंकारस्याऽभावदर्शनादलंकारस्याने 'एवंविधा कविरचना भवति' इति कविरचनासरणि: सूचिता।।

किञ्चात्र आद्यानां चतुर्णां षष्ठ-सप्तम-चतुर्दश-पञ्चदश-सप्तदशाऽष्टादशविंशै-कविंशानां च वर्णानां गुरुत्वात्तदन्येषां च लघुत्वात् सप्तभि: ३ विश्रामदर्शनाच्च स्रग्धरावृत्तम्। तल्लक्षणं तु '**चत्वारो यत्र वर्णा: प्रथमलघव: षष्टक: सप्तमोऽपि, द्वौ तद्वत्षोडशाद्यौ मृगमदतिलके! षोडशान्त्यौ तथाऽन्त्यौ। रम्भास्तम्भोरु! कान्ते! मुनिमुनिमुनिभिर्दृश्यते चेद्विरामो, बाले! वन्द्यै: कवीन्द्रै: सुतनु! निगदिता स्रग्धरा सा प्रसिद्धा।।**' इति।।४०।।

इति श्रीयोधपुरस्थेन आशुकविश्रीनित्यानन्दशास्त्रिणा निर्मिता नित्यानन्दिकानाम्नी स्वकृतदेवीस्तवव्याख्या समाप्ता।

भाषा टीका –

बहुत प्रयोजनों से परिपूर्ण, अर्थात् व्यर्थ नहीं। तात्पर्य यह है कि भक्तों के प्रयोजन सिद्धि के लिए बहुत काम में आनेवाली, मनोहर चरणगति से शोभित, अच्छे चरित्रवाली, आभूषणों से भूषित, अच्छे-

अच्छे गुणों से भरी हुई, सत्य में रुचि देनेवाली, दोषरहित, अच्छे-अच्छे वर्णों की माला धारण करनेवाली, अच्छे स्वभाववाली, मोक्ष देनेवाली, अच्छे कवियों की कविता के जैसी वह श्रीदधिमथी देवी भक्तों के लिए हर्ष को दो। यह श्लोक कवितापक्ष में भी लगता है। जैसे – अर्थों के उत्कर्ष से पूर्ण, मधुर पदवाली, अच्छे-अच्छे छन्द और अलंकारवाली, प्रसादादि गुणवाली, शृङ्गारादि रसयुक्त, श्रुतिकटु आदि दोषरहित, अच्छे अक्षरोंरूप मालावाली, अच्छी-अच्छी वैदर्भी आदि रीतिवाली ऐसी कविता भी मोक्ष को देती ही है॥४०॥

इति श्रीग्रन्थकारज्येष्ठसोदरेण पण्डित**श्रीभगवतीलालशर्मणा** विद्याभूषणेन विरचिता देवीस्तव - भाषाटीका समाप्ता॥

अलंकार –

कवि ने जिस 'वाग्भटालंकार' ग्रन्थ को आधार बनाया है उसमें कुल ३९ अलंकार हैं। इस ४०वें श्लोक के लिए कोई अलंकार शेष नहीं रहता, अतः इसमें 'श्रुतबोध' के ४०वें और अन्तिम छन्द 'स्रग्धरा' का ही नाम एवं उदाहरण दिया गया है। 'नित्यानन्द' शब्द का समावेश कर रचनाकार ने अपनी छाप भी दी है। कृति के आदि, मध्य और अन्त में मंगल सूचक शब्दों का उपयोग होना चाहिए' इस शास्त्रीय विधि का अनुसरण करते हुए कवि ने इस 'देवीस्तवः' ग्रन्थ को 'जय' शब्द से आरम्भ करके 'प्रमोद' जैसे मांगलिक शब्द से समाप्त किया है।

स्रग्धरा छन्द –

स्रग्धरा २१ अक्षरों का छन्द है। जिसमें प्रारम्भ के ४ वर्ण तथा, ६ठा, ७वाँ, १४वाँ, १५वाँ, १७वाँ, १८वाँ और अन्त के दो वर्ण अर्थात् २०वाँ तथा २१वाँ गुरु हों और ७, ७, ७, पर विराम हो, वह स्रग्धरा छन्द होता है।

इति श्री नित्यानन्द शास्त्री कृत **लघुच्छन्दोऽलंकारदर्पणः** अन्य नाम देवीस्तवः समाप्त हुआ।

आचार्य नित्यानन्द स्मृति संस्कृत शिक्षा एवं शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित रचनाएं

•

आशुकवि पण्डित श्रीनित्यानन्द शास्त्री द्वारा लिखित

1. श्रीरामचरिताब्धिरत्नम् (संस्कृत महाचित्रकाव्य) 1100/-
   पुरोवाक् / सम्पादन - देवर्षि कलानाथ शास्त्री

2. श्रीहनुमद्दूतम् (संस्कृत दूतकाव्य) 90/-
   पुरोवाक् - डॉ. रमारंजन मुखर्जी, डॉ. मानवेन्दु बैनर्जी

3. श्री बालकृष्ण नक्षत्रमाला (संस्कृत भक्तिकाव्य) 90/-
   पुरोवाक् - देवर्षि कलानाथ शास्त्री

4. रामकथा कल्पलता (हिन्दी महाकाव्य) 700/-
   पुरोवाक् / सम्पादन - डॉ. वीरेन्द्र शर्मा

5. श्री दधीचि चरित (हिन्दी खण्ड काव्य) 90/-
   पुरोवाक् / सम्पादन - डॉ. वीरेन्द्र शर्मा

डॉ. वीरेन्द्र शर्मा के हिन्दी काव्य

6. अक्षर गीता (मूल गीता का हिन्दी काव्यान्तर) 90/-
7. अक्षर श्रीदुर्गा सप्तशती (मूल दुर्गा सप्तशती का हिन्दी काव्यान्तर) 90/-

•

Published by Sahitya Academi, New Delhi

ŚRĪRĀMCARITĀBDHIRĀTNAM of NITYANANDA SHASTRI 300/-
English Translation by Dr. Satya Vrat Shastri

प्रकाशक
आचार्य नित्यानन्द स्मृति संस्कृत शिक्षा एवं शोध संस्थान
गिरिजा निकेतन, ए-136, लेक गार्डन्स
कोलकाता-700045

VIKAS # 011-22822514